

जय जय प्रियतम

राधा बाबा

दिव्य सरोवर की झाँकी



(उपरोक्त झाँकी छन्द २२५ से २२९ में वर्णित है।)

॥ श्रीहरिः ॥

महाभावनिमग्न प्रीतिरसावतार
श्रीराधाबाबा द्वारा
प्रणीत

जय जय प्रियतम

(काष्ठ-मौनकी परमैकान्तावधिमें तरंगित
भावोदधिकी रस-ऊर्मियाँ)

प्रस्तुतीकरण

राधेश्याम बंका

प्रकाशक

योगेन्द्रनाथ बंका,

गोरखपुर मशीनरी स्टोर, गोलघर, गोरखपुर-२७३००१.

मो. ०९४१५८२३९५१.

प्रमुख विक्रेता

खण्डेलवाल एण्ड संस,

अठखम्भा बाजार, वृन्दावन-२८११२१.

फोन: (०५६५) २४४२१००/२४४३१०१.

मूल्य

एक सौ पचास रुपये (१५० रु.)

प्रकाशन तिथि

सं. **२०८०** वि. वैशाख शुक्ल ३ (अक्षय तृतीया)

२३ अप्रेल २०२३

चतुर्थ संस्करण

१००० (एक हजार)

मुद्रक

दि दीनापुर प्रेस

घोष कं0 चौक, कोतवाली रोड

गोरखपुर, उ.प्र., मो. 9415283448

॥ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

कल्याणी वाणी

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

सुन मेरो बचन छबीली राधा। तैं पायौ रस सिंधु अगाधा॥
तू वृषभानु गोप की बेटी। मोहन लाल रसिक हँसि भेंटी॥
जाहि बिरंचि उमापति नाये। तापैं तें बन फूल बिनाये॥
जो रस नेति नेति श्रुति भाख्यौ। ताको अधर सुधा रस चाख्यौ॥
तेरौ रूप कहत नहीं आवै। हित हरिवंश कछुक जस गावै॥

श्रीराधारससुधासिन्धुसे आन्दोलित-आह्लादित श्रीराधाचरणनखमणि-चन्द्रच्छटासे आलोकित-अलंकृत महाभावनिमग्न श्रीराधाबाबा क्या हैं, हमने इस क्षणतक पहचाना ही नहीं। आप वहीं हैं, यहाँ नहीं, किञ्चत् भी नहीं, कदापि नहीं। आपकी वचनारसामृतधारामें होनेपर प्रतिपग प्रतिक्षण मूर्तिमान माधुर्यरससिन्धुका मिलन-ही-मिलन है, नव-नव लीलारसानुभव है। कोई लालसापूर्ण सौभाग्यवान पुमान् ही आपके वचनसुधारसप्रवाहमें प्रवाहित होकर श्रीराधा-माधव-मिलन-महोत्सवमें सम्मिलित हो सकेगा। श्रीयमुनालहर-समलंकृत निकुञ्ज-मन्दिरमें विक्रीड़ित-विलसित श्रीराधारससुधोन्मत्तके चरण-कमलोंसे चिह्नित रम्य पथमें पूर्णानुगत होकर निज-मधुप-स्वरूपमें पुनः आनेके लिये मधुर संकेत है, उनकी साक्षात्-समीपताका अलभ्य लाभ है, चिरकालतक मधुरसुधारसावगाहन करनेमें मधुर समागम है।

'प्रियतम' मधुर नाम, बिना श्रीप्रियतमा राधासे मिले, एकाकी

रहकर श्रवण कैसे कर सकते थे? अपने प्रियतम-स्वरूपानुभव कैसे कर सकते थे? असम्भव, असम्भव। (प्रियतम-प्रियतमा) कोई मधुर नाम लें, यही तो रहस्य संयुक्ततासे ओत-प्रोत आप्लावित है। प्रियतम-प्रसंगोंमें, प्रियतमा-प्रसंगोंमें, दोनोंमें एकको भी देखें तो लीला ही दीखेगी। अनुरंजितमें अनुरंजिता, अनुरंजितामें अनुरंजित। प्रेमका अपार अनुपमेय अवर्णनीय साम्राज्य है यह। संयुक्तताका ही होता है अनुभव श्रीप्रियतमकी चर्चामें। सम्यक् संयुक्ततानुभव कराते हैं प्रियतम। 'प्रियतम' यह मधुर नाम मूर्तिमान प्रियतम-प्रियतमा-परिमण्डित परस्पर-मिलित-रसानुभव है। दूरी व देरीकी कल्पनासे बेसुध करानेवाली, अविलम्ब समीप मिलनेवाली है रूपमाधुरीचर्चा लीलामाधुरीचर्चा।

युगान्तरों-जन्मान्तरोंके सुदीर्घकालीन अन्तरको भुलाकर चिर रुचिर चारुनिधि प्राणवल्लभ प्रियतम श्रीकृष्णसे हमें मिलने लालासान्वित करती हो, ऐसी है यह अद्वितीय रससुधावर्षिणी-वचनपुष्पमाला 'जय जय प्रियतम'। हमें भी महापुरुषोंकी वाणीमें, चरणचिह्नमें गमन करना है वहीं, जहाँ वे पहुँचनेका संकेत करते हैं। वही उन्मुख गमन करना है। हमें भी वाणीको लेकर वहीं रहना है।

बालकृष्णदास
(पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज)
वेणु विनोद कुञ्ज
श्रीवृन्दावन धाम

॥ श्रीहरि: ॥

निवेदन

'जय जय प्रियतम' काव्यकी रचनाकी स्फुरणा महाभावनिमग्न प्रीतिरसावतार परमपूज्य श्रीराधाबाबाको सर्व प्रथम व्रज-भूमिमें हुई। बाबाने काष्ठमौन व्रत १९५६ के अक्टूबर मासमें लिया था। इसके एक मास बाद नवम्बरमें बाबा और बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) रतनगढ़ (राजस्थान) चले आये थे। नवम्बर १९५६ से अप्रैल १९५८ तक बाबा और बाबूजी रतनगढ़में रहे। इसी १९५८ के जनवरी मासमें बाबा और बाबूजी रतनगढ़से व्रजभूमि गये थे श्रीगिरिराज भगवानकी परिक्रमा लगानेके लिये। साथमें भक्तोंका भी समुदाय था, जो भिन्न-भिन्न स्थानोंसे परिक्रमा हेतु वहाँ आ गया था। सभीके ठहरनेका प्रबन्ध किया गया था बिड़ला-मन्दिरमें, जो वृन्दावन और मथुराके मध्यमें स्थित है। इन दिनों बाबाका अति कठोर काष्ठ-मौन-व्रत चल रहा था, अत: इसी बिड़ला-मन्दिरके एक कमरेमें बाबाके नितान्त एकान्त आवासकी व्यवस्था की गयी थी।

एक बार बाबा इस बिड़ला-मन्दिरके एक खुले स्थानमें श्रीधाम वृन्दावनकी ओर मुख कर बैठे हुए थे। तभी अचानक नेत्रोंसे अश्रुका प्रवाह बह चला, साधारण नहीं, अनर्गल प्रवाह। कोई हेतु नहीं, फिर भी अनर्गल अश्रु-प्रवाह बाबाके कपोंलोंको रह-रह करके संसिक्त कर रहा था। उसी समय बाबाने एक मयूरको नृत्य करते हुए देखा। इससे और अधिक भावोद्दीपन हुआ। फिर भावोंका वेग इतना अधिक बढ़ चला कि समक्ष वृन्दावन और व्रजभूमिका दिखलायी देना बन्द हो गया। स्थूल वृन्दावन तिरोहित हो गया और बाबाके दृष्टि-पथपर अवतरित हो उठा दिव्य चिन्मय वृन्दावन, केवल दिव्य चिन्मय वृन्दावन ही नहीं, अपितु वहाँकी दिव्य रसीली लीलाकी अद्भुत-अभिनव अवली। तभी लीलाके प्रसंग और भाव, काव्यके छन्दोंमें ढलने लग गये।

इन छन्दोंकी रचनामें कोई क्रम नहीं थी, पर उस क्रमबद्धताके अभावोंमेंसे

एक अद्भुत भवितव्यकी सम्भावना उभरकर सामने उपस्थित हो गयी। ऐसा लगता है कि इस अद्भुत भवितव्यको बाबाके समक्ष प्रस्तुत करनेके लिये किसी अचिन्त्य विधानसे छन्दोंकी रचनामें क्रमबद्धताका समावेश नहीं हो पाया। इस समय जिस प्रकारसे पंक्तियोंकी रचना हुई, उससे बाबाको अनुमान हो गया कि जिस काव्यकी भविष्यमें रचना होनेवाली है, उसके कुल ग्यारह शतक होंगे। प्रथम शतककी आठ पंक्तियाँ, द्वितीय शतककी चार अथवा आठ अथवा सोलह पंक्तियाँ, इस प्रकार प्रत्येक शतककी चार अथवा आठ अथवा सोलह पंक्तियोंकी रचना हो गयी। ग्यारह शतकोंकी आरम्भिक पंक्तियोंकी रचना उसी बिड़ला मन्दिरमें तत्काल हो गयी। क्रमकी विशृंखलताने ही संकेत दे दिया कि कुल ग्यारह शतकोंकी रचना होगी।

ज्यों ही महाभाव-भावित बाबाको यह आभास हुआ कि ग्यारह शतकोंवाले किसी भावी काव्यकी रचनाके ये पूर्व-संकेत हैं, त्यों ही उन्होंने प्रियतम श्रीकृष्णसे किंचित् उपालम्भ-मिश्रित स्वरमें कहा—जो अबतक अनेक भक्त कवियों द्वारा लिखा जा चुका है, वही सब मेरे द्वारा पुनः लिखवानेसे क्या लाभ?

बाबा तो श्रीराधा-भावमें थे। बड़े प्यार भरे शब्दोंमें परम ऐकान्तिक सम्बोधन करते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा—प्राणेश्वरि! तुम रचना करो तो सही।

बाबाने पुनः उसी स्वरमें कहा—वह रचना पिष्टपेषण मात्र ही तो होगी। मुझसे व्यर्थमें श्रम क्यों करवा रहे हो? यदि रचना करवानी ही हो तो कुछ ऐसी करवाओ, जो आजतक हुई ही नहीं हो। वह एक नवीन रचना हो।

अपने अनुरोधमें और अधिक माधुर्य घोलते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा—प्राणाधिके! तुम्हारी भावनाके अनुरूप ही रचना होगी।

प्राणाधिक प्रियतम श्रीकृष्णने जब बाबाकी भावनाका अनुमोदन कर दिया, तब और कुछ कहनेके लिये रह ही क्या गया था। बाबाके उस काष्ठमौनकी अवधिमें काव्यका सृजन आरम्भ हो गया। मौनव्रतकी कठोरताके कारण कागज-कलम माँगा जाना सम्भव नहीं था और जो-जो दिव्य लीलाएँ दृष्टि-पथपर आतीं, उनकी अभिव्यक्तिके क्रमका शुभारम्भ बिड़ला-मन्दिरसे ही

हो चुका था अत: कई वर्षोंतक यह काव्य बाबाकी स्मृतिमें सुरक्षित रहा। जब यह व्रत शिथिल हुआ, तब बाबाने इसे आदरणीया बाई (श्रीसावित्री बाई फोगला) को लिखवाया। बाबा बोलते जाते थे तथा बाई लिखती जाती थी। इस लेखन-कार्यमें बाईके अतिरिक्त पूज्य बाबूजीने भी सहयोग दिया। मौनव्रतके शिथिल होनेपर भी काव्य-सृजनमें विराम तो आया नहीं। अन्य प्रकारके काव्यकी रचनाका क्रम चलता रहा। यह आवश्यक नहीं कि जिस समय काव्य-रचना हो रही हो, उस समय बाई अथवा बाबूजी उपस्थित रहें। अनेकों पंक्तियोंकी रचना हो जाती और जब बाई आती, तब फिर बाबा बाईको लिखनेके लिये कहते। इससे अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि उन विविध काव्योंकी रचित पंक्तियाँ विस्मृत हो जाती और जो विस्मृत हो गयीं, वे सदाके लिये विलुप्त हो गयीं।

ग्यारह शतकों वाला यह काव्य कहलाया 'जय जय प्रियतम'। इस काव्यकी प्रत्येक पंक्तिके अन्तमें 'प्रियतम' शब्द सम्बोधनात्मक शब्द है। प्रत्येक पंक्तिमें यह सम्बोधन इसलिये है कि अपने प्रियतमको सुनाते हुए ही प्रत्येक पंक्तिकी रचना प्राणप्रिया द्वारा हो रही है। यह काव्य आद्यन्त तुकान्त नहीं है। रचनाके प्रवाहमें तुक बैठ गयी तो उत्तम, अन्यथा तुक बैठानेका आग्रह मनमें नहीं था। रचित काव्यमें न तो संशोधन करना था और न परिवर्तन। पंक्तियोंमें जो भाव ढल गये और जिस प्रकारसे ढल गये, वही स्वीकार्य था। हाँ, एक स्थानपर एक परिवर्तन बाबाने नहीं किया, अपितु बाबासे प्रियतम श्रीकृष्णने करवाया। जब काव्य-रचना होती थी तो बाबाके सामने उपस्थित रहते थे प्रियतम श्रीकृष्ण। प्रथम शतकके आरम्भमें एक स्थानपर एक पंक्ति आयी है 'गोबर मिट्टीसे यद्यपि थी अवनी लीपी पोती, प्रियतम'। पहले 'गोबर' शब्द नहीं था। बाबाने रचना करते समय प्रयोग किया था 'गैरिक' शब्द। प्रियतम श्रीकृष्णने कहा—'गैरिक' शब्दका प्रयोग मत करो।

प्रियतम श्रीकृष्णका ऐसा संकेत मिलते ही बाबाने शब्दका परिवर्तन कर दिया और 'गैरिक' शब्दके स्थानपर 'गोबर' शब्दका प्रयोग किया।

इसी प्रकार एक बार एक चरणकी पूर्ति स्वयं प्रियतम श्रीकृष्णने की। बाबाके द्वारा छन्दके तीन चरणोंकी रचना हो गयी, पर चौथा चरण उभरकर

सामने नहीं आया. जब पर्याप्त विलम्ब होने लगा तो चौथे चरणको पूर्ण करते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा—"प्राणोंका सौदा होता है क्षणमें कुछ ऐसे ही, प्रियतम"।

प्रियतम-काव्यके चौथे शतकमें यह चरण-पूर्ति है। एक बाबा बाबाने बतलाया था—यह पंक्ति कोई साधारण वाक्य नहीं है, अपितु मन्त्र है।

'जय जय प्रियतम' काव्यकी रचनाके क्रममें शृंखला-बद्धताका अभाव रहा। कभी किसी शतककी रचना हुई और कभी किसी शतककी। काव्यकी वर्ण्य-वस्तुकी समग्रता तो ध्यानमें आ चुकी थी और पूर्वापरकी दृष्टिसे ग्यारहों शतकोंके क्रमका निश्चय भी तभी हो गया था, जब बिड़ला-मन्दिरमें 'जय जय प्रियतम' काव्यकी पंक्तियोंका सर्व-प्रथम स्फुरण हुआ था, परंतु ऐसा नहीं रहा कि आरम्भसे अन्ततक ग्यारहों शतकोंकी रचना, एकके बाद दूसरे और दूसरेके बाद तीसरे शतककी, इस प्रकार सभी शतकोंकी रचना क्रमशः होती चली गयी हो। कभी पहले शतककी रचना हो रही है तो कभी सातवें शतककी। इसका हेतु यही था कि जब जिस दिव्य लीलामें मन निमग्न होता, उसीकी रचनाका प्रवाह बह चलता। बाबाके निजी परिकर श्रीभगतजीने बतलाया—बाबा कलम-दवात-कागज लेकर थोड़े ही बैठते थे। अपनी कुटियाके एकान्तमें बैठे हुए गुनगुनाते रहते। ऐसा लगता था मानो कोई प्रेरित करता चला जा रहा है और वे भाव शब्दोंमें ढलते चले जा रहे हैं। जब बाई अथवा पूज्य बाबूजी आते तो बाबा बोलते जाते और वे लिखते जाते। कई बार ऐसा भी हुआ है कि बाई लिखनेके लिये कलम-कापी लेकर बैठी है, पर बाबा भावपूर्ण लीलाको देखकर 'भए प्रेम बस बिकल बिसेषी' और विह्वलाधिक्यके कारण वे लिखवानेकी स्थितिमें नहीं है। इधर बाबा अत्यधिक लीला-निमग्न हैं और उधर बाई अत्यधिक प्रतीक्षा-निमग्न प्रतीक्षा करते-करते बाईको कभी-कभी एक-डेढ़ घंटेतक बैठे रहना पड़ा और कभी-कभी परिस्थिति यहाँतक आती कि इससे भी लम्बी बैठकके बाद लिखने-लिखवानेके क्रमका उपक्रम बन ही नहीं पाता था। लीला-निमग्नताकी गहराईमें बाबाको देखकर बाई लेखन-कार्य अगले दिनके लिये स्थगित कर देती।

बाबाके काव्यमें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका जो स्वरूप उभरकर सामने आया है, वह वस्तुतः अभूतपूर्व और अनूठा है। रसका सागर तो अनन्त और अगाध है और उसमें अनेक लहरें उठती रहती हैं। इन लहरोंकी संख्या अगण्य है और इनकी ऊँचाई भी भिन्न-भिन्न। विभिन्न कालके विभिन्न भक्त कवियोंने रस-सागरकी सरस लहरोंका दर्शन किया और दर्शनके अनुरूप ही उन भक्त कवियों द्वारा उन सरल लहरोंका वर्णन हुआ। ये सारे वर्णन रस-सागरकी लहरोंके ही है और नितान्त सत्य है। इसीसे एक तथ्य और जुड़ा हुआ है। रस-सागरमें एक-से-एक ऊँची लहरें उठती हैं और इनका वर्णन लीला-काव्योंमें हुआ है। काव्यमें रस-सागरकी जिन ऊँची-ऊँची लहरोंका वर्णन आ चुका है, अब यह तो नहीं कहा जा सकता है कि उन ऊँची लहरोंसे और अधिक ऊँची लहर रस-सागरमें उठेगी ही नहीं। रस-सागरके उद्वेलन और उच्छलनको सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। पता नहीं, रस-सागर कब इतना अधिक उच्छिलत हो उठे कि नवीन लहरकी ऊँची पिछली सारी ऊँची लहरोंको पार कर जाये। ऐसा लगता है कि 'जय जय प्रियतम' काव्यके साथ यह तथ्य मूर्त हो उठा है। प्रियतम श्रीकृष्णकी उपस्थितिमें जिस काव्यकी रचना हों, उस काव्यमें यह सत्य समन्वित हो उठे तो क्या आश्चर्य किया जाय? लीलाके प्रवाहका लालित्य, संवादमें दैन्यका माधुर्य, भावोंके द्वन्द्वकी पराकाष्ठा, अन्तरकी व्यथाकी प्रखरता, हृदयके भावोंकी कोमलता, स्वसुखकी वाञ्छाका अभाव, स्वार्थ-शून्य समर्पणकी असीमता, प्रतिदान-निरपेक्ष प्यारकी प्रबलता, आत्मार्पण जनित विनयकी अगाधता, भावावेगकी अतिशयतामें आत्म-विस्मृति, प्रीतिमें स्वयंकी आहुति, इस प्रकारकी कुछ दृष्टियोंमें देखनेपर यही लगता है कि यह काव्य वस्तुतः लोकोत्तर है।

प्रियतम-काव्यके एक प्रसंगका भाव-गाम्भीर्य वस्तुतः आस्वादनीय है। प्रियतम श्रीकृष्णके दूत श्रीउद्धव मथुरासे व्रजमें आते हैं और आकर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकी भावमयी स्थितिको देखकर उनके श्रीचरणोंको स्पर्श करके प्रणाम करना चाहते हैं। श्रीउद्धवजीके ज्ञानकी गरिमाको तो गोपियोंके भाव-सागरकी

लहरें बहुत पहले ही बहा ले गयी थीं। ज्यों ही श्रीउद्धवजी प्रणाम करनेकी इच्छासे उठे, प्रीति-प्रतिमा श्रीराधाने अपने श्रीचरणोंको संकुचित कर लिया। श्याम-प्रिया श्रीराधा उद्धवजीको चरण-स्पर्शसे विरत करना चाहती हैं और श्रीमद्भागवतमें श्रीराधाजी कहती हैं—'मधुप मा स्पृशाङ्घ्रिं'। मेरे चरणोंका स्पर्श मत करो।

इसी प्रसंगका वर्णन करते हुए भिन्न-भिन्न भक्त कवियोंने अपने-अपने ढंगसे भाव-पल्लवन किया है। भक्त हृदय श्रीसूरदासजीकी अनुपम कृति सूरसागरमें श्रीउद्धवजीके प्रति कटूक्ति है—

मधुकर स्याम कहा हित जानै।
कोऊ प्रीति करै कैसेहू वह अपनो गुन ठानै॥
भँवर भुजंग काक कोकिल को कबिगन कपट बखानै।
'सूरदास' सरबस जौ दीजै, कारौ कृतहिं न मानै॥

* * * *

मीठे बचन सुहाए बोलत, अंतर जारनहार।
भँवर कुरंग काक अरु कोकिल, कपटिन की चटसार॥

* * * *

मधुप तुम देखियत हो अति कारे।
कपटी कुटिल निठुर निरमोही, दुख दै दूरि सिधारे॥

* * * *

ऐसी ही कारैन की रीति।
मन दे सरबस हरत परायौ, करत कपट की प्रीति॥

* * * *

काहें चरन छुवत रस लंपट, हम आगे यह गीत।
'सूर' इतै सौ बार कहा है, जो पै त्रिगुन अतीत॥

'सूर सागर' में श्रीउद्धवजीसे भ्रमरके मिससे यही कहा गया है—हे दूत! तुम मेरे चरणोंका स्पर्श मत करो, इसीलिये कि हम सरलाके प्रति तुम्हारी प्रीति कपटपूर्ण है। तुम कपटी हो, कुटिल हो, अकृतज्ञ हो, वंचक

हो, लोलुप हो, लंपट हो, अतः दूर ही रहो। तुम मेरे चरणोंका स्पर्श मत करो।

'जय जय प्रियतम' काव्यकी श्रीराधा स्वरूप सर्वथा भिन्न है। महासदाशया श्रीराधा भ्रमरको उपालम्भ नहीं सुनाती, अपितु अपनी उलझनका निवेदन करती है। चरण-स्पर्शकी अभिलाषाकी अभिव्यक्ति होते ही कृष्णप्रेममयी श्रीराधाके हृदयमें भावोंका द्वन्द्व उठ खड़ा होता है और वह द्वन्द्व सीमाका अतिक्रमण करने लगता है। भाव-द्वन्द्वके आधिक्यमें युगल चरण संकुचित हो जाते हैं। चरण-स्पर्श-हेतु-उत्सुक दूतसे प्रीति-विगलिता श्रीराधा कहती है—तुम मेरे प्राणधन प्रियतमके प्रिय दूत हो, अतः तुम्हारा और तुम्हारी प्रत्येक अभिलाषाका सम्मान करना ही मेरा परम कर्तव्य है, परन्तु तुम्हारी इस अभिलाषाने मुझे बहुत बड़ी उलझनमें डाल दिया है। एक ऐसी असमञ्जसकी स्थिति उत्पन्न हो गयी है, जिसका समाधान नहीं। मेरे प्राणधन प्रियतमने मुझसे वचन ले लिया है कि इन चरणोंपर एकमात्र मेरा ही स्वत्व रहे अथवा इन चरणोंका स्पर्श वे ही कर पायें, जिनका मन-मति-चित्त-अहं सब कुछ मुझसे एकाकार हो जाये।

हो गद्‌गद बोले—दान महा प्रियतमे! मुझे यह दो, प्रियतम!
ये पोंछ चरण असमोर्ध्व रहूँ बड़भागी सुखी सदा, प्रियतम!
मेरी ही स्वत्व रहे इनपर, केवल छुएँ वे ही, प्रियतम!
जिनका मन बुद्धि अहं काला जलदाभ बने मुझ-सा, प्रियतम!

प्रियतमके चरणोंकी यह दासी प्रियतमसे भिन्न कुछ सोच ही नहीं सकती। उनकी रुचि ही मेरा जीवन है। उनको ऐसा वचन दे चुकनेके बाद अब तुम्हीं बतलाओं कि तुम्हारी अभिलाषाका सम्मान मैं कैसे करूँ?

'जय जय प्रियतम' काव्यकी महाभावस्वरूपा, महानुरागिणी, महासमर्पणमयी महाह्लादिनी, महाविनीता श्रीराधाका स्वरूप सर्वथा अद्वितीय तथा पूर्णतः लोकोत्तर है। आन्तरिक उलझनके कारण मनके भीतर जो असमञ्जस भरा संकोच है, उसीके कारण तो उनके वे चरण युगल संकुचित होकर सिमट गये। कहाँ वह उपालम्भ और कहाँ यह उलझन? चरण-स्पर्शका वर्जन दोनों ही स्थानोंपर

होता है, किन्तु दोनोंके हेतु-निवेदनमें कितना महान अन्तर हैं? दोनोंका व्यक्तित्व सर्वथा भिन्न है।

इसी स्थानपर एक और तथ्य उल्लेखनीय है। इस तथ्यकी वैचित्री मनको बरबस चमत्कृत कर देती है। तीन धामोंकी तीर्थयात्रासे वापस आनेके बाद सन् १९५६ ई० में बाबूजी शरीरसे अस्वस्थ हो गये। चिकित्सकोंके परामर्शके अनुसार बाबूजी प्राय: एक एकान्त कमरेमें विश्राम करते रहते थे। विश्रामके निमित्त बाबूजीको परम मन-भावन एकान्त सुलभ हो गया। कमरेके इस एकान्तमें बाबूजीकी काव्य-धाराको बाधा-रहित गतिसे प्रवाहितक होनेका अवसर मिला। बाबूजी द्वारा काव्य-रचना तो पहले भी होती थी, पर अब काव्य-धाराकी गति कुछ और ही थी। भगवान श्रीकृष्णकी अहैतुकी कृपासे मन भगवल्लीलामें सदा ही लीन रहने लगा और गहरे भावोंमें नित्य निमग्नतावाली दशा होनेके कारण अब काव्यकी वर्ण्य-वस्तु था व्रज-व्रजेश-व्रजांगनाका रस-सिन्धु। इसका स्पष्ट संकेत बाबूजीने अपनी लेखनीसे किया है, जो सबके सामने आ चुका है 'पद-रत्नाकर' की भूमिकाके रूपमें। अब बाबूजीकी कवितामें वर्णन था श्रीराधा-माधवका और उनकी पारस्परिक अकलुष प्रीतिका। बाबूजीके स्वस्थ हो जानेके बाद भी उनकी काव्य-धारामें विराम नहीं आया, अपितु जितनी ही गहरी भाव-दशा, उतनी ही उत्कृष्ट काव्य-रचना होती थी। इस उत्कृष्ट काव्य-रचनाका क्रम अखण्ड और अबाध गतिसे निरन्तर चलता रहा। इस स्तरकी काव्य-रचना मुख्यत: सन् १९५६ ई० से प्रारम्भ हुई।

इसी सन् १९५६ ई० में पूज्य बाबाने काष्ठ-मौनका कठोर व्रत लिया। काष्ठमौनकी अवधिमें ही बाबाको काव्य-रचनाका स्फुरण हुआ और इसी अवधिमें रचना आरम्भ हुई उनके 'जय जय प्रियतम' काव्यकी। 'जय जय प्रियतम' काव्यकी रचनाके समय कठोर मौन व्रत होनेके कारण बाबा किसीसे भी संभाषण नहीं करते थे, यहाँ तक कि बाबूजीसे भी नहीं। स्वीकृत नियमोंके अनुसार बाबा व्रतकी अवधिमें बाबूजीसे बात कर सकते थे, पर ऐसी आवश्यकता आयी ही नहीं। जब बाबा किसीकी ओर भी दृष्टि उठाकर नहीं देखते थे, तब किसीसे भी संभाषणकी संभावना ही कहाँ?

सन् १९५६ ई० के बादसे बाबूजी और बाबा, दोनोंके ही द्वारा काव्य-रचनाका आरम्भ होता है। इन दोनों विभूतियोंका परस्परमें विचारों एवं भावोंका आदान-प्रदान तनिक भी नहीं होता था, इसके बाद भी दोनोंके काव्यमें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा एवं नन्दनन्दन श्रीकृष्णके 'पर-तत्त्व' के चित्रणमें और उनकी पारस्परिक प्रीतिके स्तर एवं स्वरूपके चित्रणमें अद्भुत साम्य है। इतना अधिक साम्य है, मानो दोनों विभूतियोंके मध्य नित्य ही परस्परालाप होता रहा है और मानो परस्परालापके मध्य श्रीप्रिया-प्रियतम विषयक चिन्तन-मनन होता रहा है। यदि ऐसा नहीं होता तो इन दोनों विभूतियों द्वारा रचित काव्यमें इतने अधिक साम्यका समावेश कैसे हो जाता? साम्यको देखकर कोई भी व्यक्ति इस प्रकारकी बातको सोच ले सकता है, पर वास्तविकता यह है कि इन दोनों विभूतियोंकी काव्य-रचनामें श्रीप्रिया-प्रियतमके स्वरूप-चित्रणमें जो साम्य है, वह वस्तुतः मनको चमत्कृत कर देता है और इस साम्यके अवतरणका हेतु भी अद्भुत है।

इस स्थलपर कुछ पुरातन प्रसंगोंकी ओर इंगित करना आवश्यक हो गया है। सन् १९३६ ई० में गीतावाटिकामें एक वर्षीय अखण्ड हरिनाम संकीर्तन हो रहा था। उस समय बाबा सर्व प्रथम गीतावाटिकामें आये थे। तब बाबा पूर्णतः शांकरमतानुयायी थे और उनकी निष्ठा सर्वथा अद्वैतवादी थी। सर्वप्रथम मिलनके समय बाबूजीने संन्यासी वेषमें पधारे हुए अपरिचित बाबाको चरण छूकर प्रणाम किया। गीतावाटिकाके अग्रभागमें चरण-स्पर्शके माध्यमसे बाबूजीके 'स्थूल-संस्पर्श' का प्रभाव ऐसा था कि बाबा निराकारवादीसे साकारोपासक बन गये और वृन्दावन धामकी परम निधि श्रीराधा-माधवकी सरस सम्पत्तिका महादान बाबाको मिल गया।

सन् १९३९ के मई मासमें बाबा बाबूजीके नित्य साथ रहने लग गये। इसके बाद सम्भवतः जून या जुलाई १९३९ की बात है। बाबाका निवास गीतावाटिकाके पिछले भागमें एक कुटियाके अन्दर था। बाबाके मनमें व्रजभाव सम्बन्धी कुछ ऐसी गुत्थियोंका उद्भव हो गया, जिनको कोई सिद्ध रसिक संत ही सुलझा सकता था। बाबा जानते थे कि बाबूजी द्वारा यह कार्य हो

सकता है, पर बाबूजी भला गुरु-पद क्योंकर स्वीकार करने लगे? इधर बाबा अपनी गुत्थियोंमें उलझे हुए कुटियाके द्वारपर बैठे हुए थे, उधर बाबूजीकी अन्तर्भेदी दृष्टिने अधिकारीके मनकी कुण्ठा और खिन्नताको जान लिया। बाबूजी सूक्ष्म शरीरसे वहाँ पधारे, जहाँ बाबा कुण्ठित मनसे बैठे हुए थे। बाबूजीने अपनी अँगुलीसे बाबाकी अँगुलियोंके दसों नखोंका स्पर्श किया। एक प्रकारसे यह शक्ति-पात ही था। गीतावाटिकाके एकान्त भागमें नख-स्पर्शके माध्यमसे बाबूजीके 'सूक्ष्म-संस्पर्श' का प्रभाव ऐसा था कि बाबाकी सारी गुत्थियाँ खुल गयीं और रसोपासनासे सम्बन्धित सभी समस्याओंके स्थायी समाधानका महादान बाबाको मिल गया।

अब इस 'स्थूल-संस्पर्श' एवं 'सूक्ष्म-संस्पर्श' की परिधिसे दूर, बहुत दूर, अतीव दूर अब पूर्णतः इन्द्रियातीत स्तरपर एक ऐसी प्रक्रिया सक्रिय हो उठी, जिससे असम्भव भी सम्भव हो गया। बाबूजीसे बाबाका मन इतना अधिक जुड़ा हुआ था, दोनोंका भाव-सम्बन्ध इतना अधिक प्रबल था कि वस्तु एक ओरसे दूसरी ओर स्वतः संक्रमित हो गयी। बाहरसे देखने भरमें बाबा बाबूजीसे नहीं मिलते थे, पर भीतरसे उनका नित्य मिलन है। प्रत्यक्षतः वियुक्त होते हुए भी वस्तुतः दोनोंमें नित्य संयुक्ति है। भावात्मक एकात्मताके कारण दोनोंमें परम सांनिध्य है और उस भावात्मक सांनिध्यने ही वस्तु-संक्रमणको सम्भव बना दिया। जिसकी सक्रियता बोधकी सीमामें सरलतापूर्वक नहीं आ पाती, ऐसे संक्रमणके द्वारा उन 'दो महादानों' से भी इस महत्तर दानकी प्रक्रियाँ सहज ही सम्पन्न हो गयी। वे दो महादान हुए थे उस प्रत्यक्ष गीतावाटिकामें और यह महत्तर दान हुआ था इस परोक्ष भाववाटिकामें। इस 'भाव-संस्पर्श' का प्रभाव ऐसा था कि पूर्णतः परोक्ष स्तरीय संक्रमणके माध्यमसे बाबाके हृदयमें वह स्वरूप प्रतिबिम्बित-प्रतिफलित हो उठा, जो बाबूजीके हृदयमें था। महाभावस्वरूपिणी श्रीराधा एवं रसराजस्वरूप श्रीकृष्णके 'गुणरहित-कामनारहित-प्रतिक्षणवर्धमान-अविच्छिन्न-सूक्ष्मतर-अनुभवरूप' प्रेम-प्रणालीकी जो सच्चिदानन्दमयी छवि बाबूजीके हृदयमें थी, वही छवि बाबाके अन्तःकरणमें उद्भासित हो उठी। यदि एक ओर संक्रमित करनेकी योग्यता थी तो दूसरी

ओर संक्रमितको ग्रहण करनेकी पात्रता थी। संक्रमित छविको बाबाने हृदयसे स्वीकार किया, जीवनमें अंगीकार किया और वे हो गये नखशिख सर्वथा तदाकार। बाबाने स्वयं कहा है—श्रीपोद्दार महाराज यदि गुलाबके पौधे हैं तो उस पौधेकी एक शाखापर खिलनेवाला मैं एक छोटा-सा गुलाबका फूल हूँ। मुझसे भी अधिक सुन्दरतर, अधिक श्रेष्ठतर पुष्प, एक नहीं, अनेकानेक पाटल पुष्प खिला देनेकी क्षमता इस पौधेंमें है।

बाबूजीके हृदयमें दिव्य युगल श्रीराधा-माधवके दिव्य प्रेमकी जो परम सुन्दरतम, परम मधुरतम एवं परम पवित्रतम छवि थी, वही छवि संक्रमित हो उठी बाबाके हृदयमें और उसी परमोज्ज्वल छविकी अभिव्यक्ति हुई है बाबाके 'जय जय प्रियतम' काव्यमें।

बाबूजी और बाबाके द्वारा वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा एवं नन्दनन्दन श्रीकृष्णके पारस्परिक प्रीतिका जैसा चित्रण हुआ है, वह सर्वथा अमानवीय धरातलकी वस्तु है। यह प्रीति सर्वथा शरीरातीत, आद्यन्त काम-गन्ध-शून्य, प्रतिक्षण वर्धनशील, नित्य पवित्रतम, प्रतिदान-भावना-निरपेक्ष, स्व-सुख-वाञ्छा-विरहित, तत्सुखैक-तात्पर्यमय, दिव्यानन्द-विधायक, एकमात्र अनुभव गम्य है और प्रीतिके इस लोकोत्तर स्वरूपके उद्‌घाटनने प्रेम-साधनाके क्षेत्रके उन सभी प्रकारके मालिन्य एवं कालुष्यको दूर कर दिया, जो अवसर पाकर इस साधना-क्षेत्रमें जाने-अनजाने रूपमें प्रविष्ट हो गये थे। बाबूजी और बाबाके माध्यमसे प्रीतिका जो महोत्कृष्ट एवं महोज्ज्वल स्वरूप जगतके सामने आया है, उसकी स्मृति मात्रसे मन आह्लादित हो उठता है।

बाबाका यह 'जय जय प्रियतम' काव्य उनकी काष्ठ-मौन-अवधिका एक गौरवपूर्ण प्रसाद है। काष्ठ-मौनकी अवधिमें ही पूज्य श्रीबाबाकी श्रीराधाभावमें प्रतिष्ठा हुई। महाभाव-भावित श्रीराधाबाबाकी प्रीतिप्रदायिका परमपुनीता पद-रज-कणिकाको सतत वन्दन है एवं उनके सदैव शुभ-सदन सर्व-समर्थ युगल पदारविन्दपर उन्हींके द्वारा पालित-पोषित मुझ अकिञ्चनात्माकी यह भाव-सुमनाञ्जलि समर्पित है—

तेरे आँचलकी जय हो!

तेरे आँचलकी जय हो,
जो स्नेहके कोमल तारोंसे निर्मित है,
जो स्नेहके भव्य भावोंसे भावित है,
जो स्नेहकी ललित लीलाओंसे लसित है।

तेरे आँचलकी बार-बार जय हो,
जिसकी किनारीका किनारा नहीं,
जिसकी सुन्दरताकी सीमा नहीं,
जिसकी मधुरताका पार नहीं।

तेरे आँचलकी सतत जय-जयकार हो,
जो प्रेमका निधान है,
जो नग्नका परिधान है,
जो स्वयंमें महान है।

तेरे आँचलकी करुणा अपार है,
जो ग्लानिसे गलते हुए जनकी व्यथा हर लेती है,
जो कलुषसे कलपते हुए जनकी कालिमा पोंछ लेती है,
जो हृदयसे समर्पित हुए जनको सुषमित बना देती है।

तेरे आँचलकी महिमा शब्दातीत है,
जिसका दर्शन श्रान्त पथिकके लिये एक आन्तरिक आश्वासन है,
जिसका आश्रय क्लान्त पथिकके लिये एक लोकोत्तर अवलम्बन है,
जिसका वन्दन भ्रान्त पथिकके लिये एक आध्यात्मिक नवजीवन है।

तेरे आँचलकी निरपेक्षता अकल्पनीय है,
जो आश्रितोंसे कृतज्ञताकी अभिलाषा नहीं करती,
जो गुणज्ञोंसे आदरकी आशा नहीं करती,
जो स्वजनोंसे सराहनाकी अपेक्षा नहीं करती।

तेरे आँचलकी सदाशयता सदा प्रणम्य है,
जिसकी छायामें आलोचक-प्रशंसक समान रूपसे स्थान पाते हैं,

जिसकी छायामें परिचित-अपरिचित समान रूपसे सम्मानित होते हैं,
जिसकी छायामें साधु-असाधु समान रूपसे समादृत होते हैं।

तेरे आँचलके तन्तु-तन्तुकी बलिहारी है,
जिसके तार-तारमें प्रेमके प्रदर्शनकी भावना नहीं,
जिसकी तार-तारमें प्रीतिके प्रतिदानकी कामना नहीं,
जिसके तार-तारमें प्यारके प्रचारकी कल्पना नहीं।

तेरे आँचलकी निकुञ्ज-भावना नित्य वन्दनीय है,
जिसका अवतार प्रियतमके प्यारकी जयकार है,
जिसका अभिसार प्रियतमके हृदयकी मनुहार है,
जिसका विस्तार प्रियतमके विहारकी झंकार है।

तेरे आँचलको—जी करता है—चूम लूँ,
जिसकी अरुणिमा स्नेहमें मूक बलिदानका पाठ है,
जिसकी फहरान स्नेहमें मूक उपासनाका गीत है,
जिसकी गाथा स्नेहमें मूक सेवाकी सीख है।

तेरे आँचलकी जय-जय क्यों न मनाऊँ,
जो अकल्पनीय महान है, पर जिसे अपनी महानताका अभिमान नहीं,
जो अतुलनीय सुन्दर है, पर जिसे अपनी सुन्दरताका अभिज्ञान नहीं,
जो अद्वितीय मधुर है, पर जिसे अपनी मधुरताका अनुमान नहीं।

वही आँचल मेरे लिये एक मात्र उपास्य है,
वहीं आँचल मेरे लिये एक मात्र वरेण्य है,
वही आँचल मेरे लिये एक मात्र आश्रय है।

वही आश्रय दे,
वही छाया दे,
वही स्नेह दे।

विनीत
राधेश्याम बंका

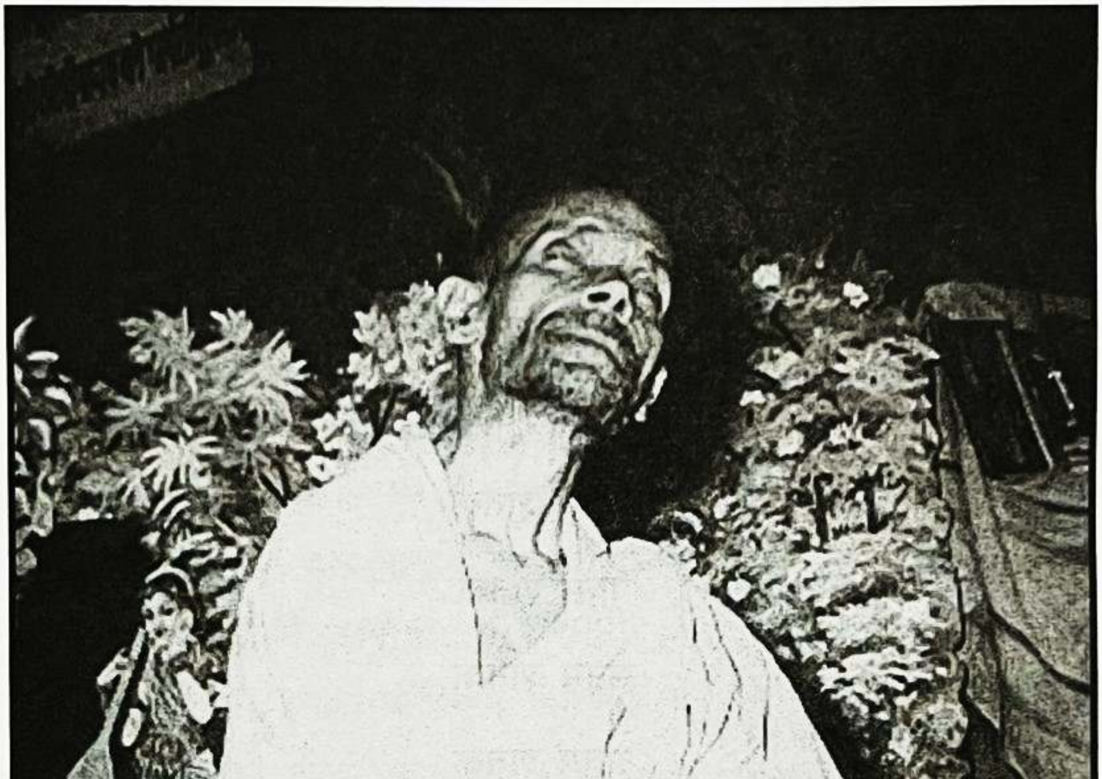
इनका काष्ठ-मौन 'रस-समुद्र' में निमज्जन है

एक होता है रस-मार्ग और दूसरा ज्ञान-मार्ग। दोनों मार्गोंमें तत्त्वज्ञान अपेक्षित है। रस-मार्गका सिद्ध पुरुष तत्त्वज्ञानसे रहित नहीं होता और तत्त्वज्ञानीमें तत्त्वज्ञान रहता ही है, रस चाहे न हो। .... (बाबा) का काष्ठमौन केवल तत्त्वज्ञानमें स्थितिजनित पंचम भूमिकावाला नहीं, क्रियाके अभावके स्वरूपवाला नहीं, अपितु रस-समुद्रके लहरानेके स्वरूपवाला .... (बाबा) के जो अन्तरंग जीवनके सम्पर्कमें आये हैं, उनको मालूम है कि महाभावकी जो अगले स्तरकी चीज है, जिसकी रूप-रेखा शायद गोस्वामी प्रभृत रस-मर्मज्ञोंतकने भी नहीं खींची, वैसी चीज इनमें व्यक्त हुई, इनके अनुभवमें आयी। ......

इस प्रकारसे इनका काष्ठमौन असलमें इनका रस-समुद्रमें निमज्जन है। ...... साधनाके क्षेत्रमें यह एक बड़ी विलक्षण वस्तु है कि जहाँ रस-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व एक-दूसरेके अ-प्रतिद्वन्द्वी होकर एक साथ एक रूपमें रहते हों। ये रहे हैं पहले। ऐसा नारदादिमें था। भगवान शंकराचार्यमें भी ऐसा माना जाता है, लेकिन ये उदाहरण विरल होते हैं।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

संकेत-लतिका



महाभावनिमग्न श्रीराधा बाबा

॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः ॥

॥ श्रीसूर्याय नमः ॥

॥ विजयेतां प्रियाप्रियतमश्रीराधामाधवौ ॥

॥ श्रीसर्वभगवदनुरागीवैष्णवेभ्यो नमः ॥

जय जय प्रियतम

प्रथम शतक

ललिताम्बामयीं ध्येयां रामदत्तापदाभिधाम्।
आत्मस्वरूपिणीं साध्वीं वन्देऽहं धर्ममातरम्॥ १ ॥ राधा॥
कृष्णस्वरूपिणीं वन्दे हनुमद्गुप्तसन्ततिम्।
नित्यां धर्मस्वसारं वै मञ्जुश्यामां सहोदराम्॥ २ ॥ कृष्ण॥

इन धुँधली आँखोंसे सब कुछ मैं देख नहीं पाती, प्रियतम!
सपना-सा विश्व बने तुमको मैं प्यार न दे पायी, प्रियतम!
था खेल मनोहर वह, जिसमें गुरुदेव बने तुम थे, प्रियतम!
करने बैठी हूँ अब पूजा, प्राणोंमें व्यथा लिये, प्रियतम॥ १॥

हूँ वही, जिसे कहकर 'मेरे प्राणोंकी रानी', हे प्रियतम!
थे पकड़ लिये वे हाथ, लगी मिंहदी जिनमें थी, हे प्रियतम!
पर भग्न हुआ-सा था गृह वह, जिसमें रहती बाला, प्रियतम!
थी तमसे परिपूरित रजनी, जब तुम आये थे, हे प्रियतम॥ २॥

दीपकतक नहीं वहाँ था, कुछ कण थे रजके बिखरे, प्रियतम!
गोबर-मिट्टीसे यद्यपि थी अवनी लीपी पोती, प्रियतम!
थे सब कपाट टूटे गवाक्षके तथा द्वारके भी, प्रियतम!
वह पवन धूलि भरकर दुकूलमें लाया करता था, प्रियतम॥ ३॥

उस कच्चे घरमें रहकर भी निर्मल थी वह बाला, प्रियतम!
था सका नहीं छू उसे एक कण बाहरसे आया, प्रियतम!
थी छिपी शक्ति उसमें सहस्र पावक-पुञ्जोंकी, हे प्रियतम!
सामर्थ्य नहीं थी कहीं किसीमें, जो दूषित कर दे, प्रियतम॥ ४॥

उस पथसे जो जाते, पाते पर देख भग्न गृह ही, प्रियतम!
अवकाश कहाँ किसको था, जो भीतर जाकर देखें, प्रियतम!
है मात्र खण्डहर ही प्रायः सबके मनमें आता, प्रियतम!
वे थे राही, था लगा ध्यान उनका पथपर अपने, प्रियतम॥ ५॥

दल तथाकथित राजाओंका, ऋषियोंका, मुनियोंका, प्रियतम!
कुछ सिद्धोंका भी आता था एवं गन्धर्वोंका, प्रियतम!
पड़ती उसपर जो दृष्टि कहीं उनकी पैनी-सी, हे प्रियतम!
वह भवन वस्तु बनता विराग अथवा विनोदकी ही, प्रियतम॥ ६॥

कुछ थे विहङ्ग उसमें अवश्य, पर थे वे सब सोये, प्रियतम!
थे नीड़ सभीके भिन्न-भिन्न, सहचरी साथमें थी, प्रियतम!
उनका था वह संसार अलग, वे थे भूले उसमें, प्रियतम!
है कौन यहाँ बाला बसती, वे क्या कैसे जानें, प्रियतम॥ ७॥

वह रात नहीं थी चार पहरवाली, जो मिट जाती, प्रियतम!
हैं सब कहते अनादि उसको, जो पण्डित सच्चे हैं, प्रियतम!
होता है उसका अन्त उसीके जीवनमें, बस, हे प्रियतम!
जो रूप अनिर्वचनीय तथा अद्भुत-अचिन्त्य देखे, प्रियतम॥ ८॥

इसलिये विहङ्गम सोये थे, पर थी जगती बाला, प्रियतम!
थी नींद नहीं आयी क्षणभर भी जीवनमें उसके, प्रियतम!
झरती रहती आँखें, ज्वाला हृत्तलमें थी जलती, प्रियतम!
था पास नहीं कोई उसके, जो अश्रु पोंछ दे, हे प्रियतम॥ ९ ॥

रहते कुञ्चित काले हरदम थे केश खुले उसके, प्रियतम!
भीगा रहता परिधान नील नयनोंकी धारासे, प्रियतम!
उन जीर्ण हुए वातायनके रन्ध्रोंसे लगकर, हे प्रियतम!
देखा करती थी निर्निमेष लोचनसे अम्बरको, प्रियतम॥ १०॥

भ्रम होता सहसा उसे कभी, रवि उदित हो चुका, हे प्रियतम!
सुनने लगती कलरव खगका, भ्रमरोंका गुञ्जन, हे प्रियतम!
स्वर चातकका 'पी कहाँ' तथा कोयलकी 'कू-कू', हे प्रियतम!
श्रवणोंमें आकर लग जाती होने प्रतीति दिनकी, प्रियतम॥ ११॥

आशाकी बेलि हरी होती, वे आयें आज कहीं, प्रियतम!
मिलनेका फिर अनुभव करती, रस-सरितामें बहती, प्रियतम!
उठता वह बोल पहरुआ खग इतनेमें धीरेसे, प्रियतम!
जगकर उस सपनेसे बाला रोने लगती थी, हे प्रियतम॥ १२॥

थी राजाकी पुत्री बाला, स्वर्णिम दिन थे देखे, प्रियतम!
माता उसकी थी रानी, वह दृगपुतरी थी जिसकी, प्रियतम!
उसकी थी एक बहिन छोटी, प्राणोंकी छाया थी, प्रियतम!
उसका था एक बड़ा भाई, प्राणोंका सहचर था, प्रियतम॥ १३॥

अगणित सहेलियाँ थीं उसकी, प्राणोंकी धारा थी, प्रियतम!
दासी-दासोंका था समूह, थी प्राण बनी उनके, प्रियतम!
अगणित कुटुम्बिजन थे उसके, प्राणोंकी ऊर्मि हुए, प्रियतम!
पशु-पक्षीतकके प्राणोंमें वह थी निवास करती, प्रियतम॥ १४॥

उद्यानोंमें, आरामोंमें विहगी-सी थी फिरती, प्रियतम!
महलोंमें चञ्चल चपला-सी हँसकर खेला करती, प्रियतम!
अपलक सब देखा करते थे क्रीडा शैशव उसकी, प्रियतम!
न्योछावर जो न हुआ उसपर था नहीं कहीं कोई, प्रियतम॥ १५॥

है बात एक दिनकी, जब वह थी वर्ष सातकी, प्रियतम!
मनमें आया, जाऊँ वनमें मैं पुष्प चयन करने, प्रियतम!
उत्तरकी ओर मनोहर था वन एक विशाल घना, प्रियतम!
कल-कल निनादिनीके तटपर शोभाका आकर, हे प्रियतम॥ १६॥

रहते थे मानो सदा वहीं ऋतुराज-शरद दोनों, प्रियतम!
पर था निषेध उस काननमें सबके जानेका, हे प्रियतम!
अनुमति राजाकी लेकर ही कोई जाता था, हे प्रियतम!
नृपको अपनी कुलदेवीके दर्शन होते उसमें, प्रियतम॥ १७॥

अतएव पूर्णिमा जब आती तिथि तथा अमावसकी, प्रियतम!
थी उस वनकी देती फेरी, जो प्रजा राजकी थी, प्रियतम!
उनमें जिसकी अतिशय निष्ठा देवीकी होती थी, प्रियतम!
उसको दर्शन हो जाता था प्रत्यक्ष दिव्य उनका, प्रियतम॥ १८॥

अतुलित पवित्रताका अनुभव तो सबको ही होता, प्रियतम!
सब आ-आकर अपनी-अपनी बातें कहते वे थे, प्रियतम!
नृपतनयाने थी सुनी वहीं उनसे वनकी गाथा, प्रियतम!
उत्कण्ठित अतः हुई वह थी जानेके लिये वहाँ, प्रियतम॥ १९॥

वह जननीसे आकर बोली पीयूष भरे स्वरमें, प्रियतम!
'कुछ फूल बीन लाऊँ मैं री! उस वनसे' और हँसी प्रियतम!
भर आँखें रानीकी आयीं, सुनकर फिर जब देखी, प्रियतम!
कैशोर वयसकी लाली-सी नव मुखपर पुत्रीके, प्रियतम॥ २०॥

लोचनके आगे नाच उठी रानीके जीवनकी, प्रियतम!
घटना प्राचीन, नवीन वधू थीं बनी वहीं आयी, प्रियतम!
वह थी सुहागकी रात, मौन थे आर्यपुत्र बैठे, प्रियतम!
वे थीं बैठी, था झुका हुआ सिर उनके चरणोंमें, प्रियतम॥ २१॥

जीवनसंगिनी अलौकिक थी सुन्दरी मिली, फिर था, प्रियतम!
दोनोंमें ही नव यौवनका उन्मेष; किन्तु दोनों, प्रियतम!
हो गये विरत उन विषयोंके उन्मादी भोगोंसे, प्रियतम!
जागा अन्तस्तलमें सहसा ज्योतिर्मय भाव, अहो! प्रियतम॥ २२॥

हम दोनों अभी इसी क्षणसे हो चुके समर्पित हैं, प्रियतम!
जो कृपामयी त्रिभुवनजननी हैं, उनके श्रीपदमें, प्रियतम!
किंकरी और किंकर हम हैं दोनों विक्रीत हुए, प्रियतम!
केवल उनकी ही सेवा अब जीवन पर्यन्त करें, प्रियतम॥ २३॥

उनका आदेश भले जब हो, तब एक पुत्र बस, हो, प्रियतम!
जो परम्पराका नृपकुलकी निर्वाह वीर कर दे, प्रियतम!
पश्चात सदाके लिये लीन हम हों श्री-पद-नखमें, प्रियतम!
आदर्श रखें हम, जिसे प्रजा अपनाकर सुखी बने, प्रियतम॥ २४॥

इस निश्चयको लेकर उनने कुछ मास बिताये थे, प्रियतम!
आयी जब रात सदाशिवकी उस बार शिशिर ऋतुमें, प्रियतम!
आदरसे दम्पतिने ली थी दीक्षा सद्गुरु ऋषिसे, प्रियतम!
निगमागम सम्मत ली शिक्षा आराधन-पद्धतिकी, प्रियतम॥ २५॥

हरिशयनी निशा मनोहर थी, अर्चन आरम्भ हुआ, प्रियतम!
थी त्रिपुरसुन्दरीकी प्रतिमा प्रासाद कक्षमें ही, प्रियतम!
अद्भुत सुवर्णसे विरचित थी; फिर था प्रभाव ऐसा, प्रियतम!
हो जाता स्वतः नमित सबका सिर मन्दिर परिसरमें, प्रियतम॥ २६॥

हो कहीं चित्तकी वृत्ति, किन्तु आते ही सीमामें, प्रियतम!
चाहे कोई कैसा भी हो, भावित होता सहसा प्रियतम!
विस्मृत सब कुछ होकर समाधि मानो लग जाती थी, प्रियतम!
प्रहरी ही होश कराता यह कहकर 'दर्शन कर लो' प्रियतम॥ २७॥

लेकर अञ्जलिमें पुष्प तथा पङ्किल लोचनसे, हे प्रियतम!
जाकर जब अर्पित कर देता अपनेको श्रीपदमें, प्रियतम!
होता था भान तभी उसको अग्रिम कर्तव्योंका, प्रियतम!
वे अहो! न जाने कबसे थीं राजित देवी कुलकी, प्रियतम॥ २८॥

युवराज रूपमें ही जब थे वे वर्तमान राजा, प्रियतम!
ऋषितुल्य पितृचरणोंकी ले अनुमति, ली थी उनने प्रियतम!
अपने ऊपर सँभाल पूरी देवीकी सेवाकी, प्रियतम!
उसके पहले भूदेवोंके द्वारा अर्चन होता, प्रियतम॥ २९॥

श्रद्धापूरित मनसे यद्यपि युवराज पूछते थे, प्रियतम!
भूदेवोंसे कुलदेवीका इतिवृत्त पुराना, हे प्रियतम!
हँसकर पर वे कह देते थे-'हे वत्स बाट देखो, प्रियतम!
ये जगजननी बतलायेंगी, जो बतलाना होगा' प्रियतम॥ ३०॥

फिर सभी व्यवस्था सेवाकी क्रमशः भूदेवोंने, प्रियतम!
अतिशय विनम्र युवराज कुशल मतिमान धीरको ही, प्रियतम!
दी सौंप और मंगलमय कर सिरपर रखकर उसके, प्रियतम!
'तेरी जय हो' कहकर सहसा अन्तर्हित सभी हुए, प्रियतम॥ ३१॥

तबसे हो गये वर्ष सत्तर, नौ मास और दिन दो, प्रियतम!
अविराम भाव संवलित हुए, नृपने की थी अर्चा, प्रियतम!
संबोधन 'सहधर्मिणि' का भी अक्षरशः सत्य घटा, प्रियतम!
रानीके जीवनमें भी, है तुलना न कहीं जिसकी, प्रियतम॥ ३२॥

अब पुनः वही हरिशयनीकी रजनी थी उजियारी, प्रियतम!
सर्वथा निरभ्र गगन था, सब हँसते-से थे तारे, प्रियतम!
अन्तःसत्त्वा थी रानी फिर मन्त्रीकी पत्नी भी, प्रियतम!
थीं हुई त्रिपुरसुन्दरी तुष्ट बहुकाल-अर्चनासे, प्रियतम॥ ३३॥

नौ मास और कुछ दिन पहले इस देवशयनसे ही, प्रियतम!
प्रत्यक्ष महादेवीका था दर्शन-सौभाग्य मिला, प्रियतम!
रानीको फिर समानशीला मन्त्रीकी दाराको, प्रियतम!
थीं हँसी महामाया एवं कह गयी स्वयं यह थीं, प्रियतम॥ ३४॥

'आये यह राजपुत्र, इससे पहले गृह मन्त्रीका, प्रियतम!
मेरी क्रीडाकी भूमि बने, आरम्भ करूँ मैं ही, प्रियतम!
जो प्रथम कृत्य रंगस्थलका है नटी किया करती, प्रियतम!
फिर हो लीला, होती है जो चिन्मयी कदाचित् ही' प्रियतम॥ ३५॥

उत्सव था आज नृपतिपुरमें अवनीश भवनमें भी, प्रियतम!
थी देर घड़ी आधीकी ही होनेमें मध्य निशा, प्रियतम!
नीराजन लिये खड़े नृप थे, रानी थीं पास खड़ी, प्रियतम!
थीं महात्रिपुरसुन्दरी अहो! सचमुच अलसायी-सी, प्रियतम॥ ३६॥

दौड़ी आयी थी कहने यह दासी मन्दिरमें ही, प्रियतम!
हैं प्रसव-वेदना-सी अनुभव कर रही सचिव-गृहणी, प्रियतम!
श्री-प्रतिमाके दृग-कमल अहो! क्षणभरके लिये हिले, प्रियतम!
संकेत मिला था रानीको जानेके लिये वहीं, प्रियतम॥ ३७॥

छूकर वे श्रीपदनखको थीं चल पड़ी तुरन्त तथा, प्रियतम!
पहुँची उस सदन कक्षमें थीं जैसे, बस, भान हुआ, प्रियतम!
है ज्योति अंशुमालीकी सच फैली सर्वत्र वहाँ, प्रियतम!
दासीकी आँखें बन्द हुईं भीतर वह जा न सकी, प्रियतम॥ ३८॥

मीलित नयना ध्यानस्थ हुई मन्त्रीकी जायाकी, प्रियतम!
गोदीमें प्रकट जगन्माता हो गयी अचानक थीं, प्रियतम!
अप्रतिम सुन्दरी नवजाता कन्याका वेष लिये, प्रियतम!
केवल रानी ही देख सकीं अद्भुत उस घटनाको, प्रियतम॥ ३९॥

क्षणभरमें फिर उसपर निर्मल आवरण एक आया, प्रियतम!
वे नाल आदि वस्तुएँ सभी निर्मित हो गयीं वहाँ, प्रियतम!
रो उठी बालिका भी वह अब इस भाँति उधर मानो, प्रियतम!
नारायण निद्रित हुए इधर वे नारायणी जगीं, प्रियतम॥ ४०॥

कन्याके मुखमण्डलपर थी मोहनता श्री-सी ही, प्रियतम!
अङ्गोंमें भी वैसी ही थी दुस्सह-सी प्रभा भरी, प्रियतम!
रोना उसका उस समय अहो! श्रुति-मधुर तन्त्ररव था, प्रियतम!
दर्शक आनन्द विमूढ हुए, खिल उठी प्रकृति सारी, प्रियतम॥ ४१॥

आयी श्रावण कृष्णाकी थी फिर तीज वार बुध था, प्रियतम!
रविके अस्ताचल जानेमें घटिका थी पाँच बची, प्रियतम!
नादित धौंसेके शुभ रवसे प्रासाद हुआ सहसा, प्रियतम!
नृप-तनय-जन्मका मंगलमय संवाद मिला सबको, प्रियतम॥ ४२॥

नृप बालकके गोरे मुखकी शोभा किस भाँति कहूँ, प्रियतम!
देखी जिनने बोले न कभी, बोले वे लख न सके, प्रियतम!
दो भुजा और नीलिमा मात्र आवृतकर मायासे, प्रियतम!
सचमुच वे मधुसूदन ही थे आये शिशु-वेष धरे, प्रियतम॥ ४३॥

दो पर्वतकी द्रोणीमें थी फैली जो राजपुरी, प्रियतम!
बाइस दिनतक कण-कणमें था उसके कम्पन सुखका, प्रियतम!
रत्नोंकी ज्योति रातमें थी इङ्गित करती, मानो, प्रियतम!
नृपतनय-अमात्यसुताके शुभ निर्मल भावी यशका, प्रियतम॥ ४४॥

महारानी और सचिवगृहणी, दोनों सहोदरा थीं, प्रियतम!
थी चाह बहिनकी, हो उत्सव, नृपसुत आ जाय तभी, प्रियतम!
नृप-कुल-देवीकी भी रुचि थी ऐसी ही, इसीलिये, प्रियतम!
थी उत्समयी वह नित्य सुखद अँधियारी तीज बनी, प्रियतम॥ ४५॥

बीता फिर वर्ष और आयी भादों शुक्ला षष्ठी, प्रियतम!
रविवासर था, थे भानु उदित दो घड़ी हुए पहले, प्रियतम!
रानीकी एक बहिन जो थी मौसेरी नातेमें, प्रियतम!
शारदा सही जो थी, उसको कन्या थी एक हुई, प्रियतम॥ ४६॥

जो महात्रिपुरसुन्दरी अघट-घटना-पटीयसी हैं, प्रियतम!
चिन्मयी ज्योति उनकी ही थी कन्या बनकर आयी, प्रियतम!
होनेवाली लीला जो थी जिसमें थीं नटी बनी, प्रियतम!
वे स्वयं, सचिवके गृह उसका संविद्-पट उठा वहाँ, प्रियतम॥ ४७॥

वह था संयोग, महारानी मिलने आयी थीं, हे प्रियतम!
भगिनीसे, प्रेरित होकर ही कुलदेवीके द्वारा, प्रियतम!
गोदीमें तेरह मास तथा सत्रह दिनका शिशु था, प्रियतम!
मंगलमय चरण पड़े जब थे उनके उस पत्तनमें, प्रियतम॥ ४८॥

रानीकी अनुजा भी उनके थी साथ लिये पुत्री, प्रियतम!
दोनोंके ही समक्ष अभिनव था दृश्य खुला पहला, प्रियतम!
क्रीडारत वे दोनों शिशु थे, हाथोंमें हाथ लिये, प्रियतम!
तीनों बहिनें बैठी प्रमुदित थीं देख रही उनको, प्रियतम॥ ४९॥

इतनेमें ही मानो सहस्र उग उठे दिवाकर थे, प्रियतम!
रानीकी बहिन तीसरीके उर-उदर-लोचनोंमें, प्रियतम!
हो गयी प्रभा परिणत तुरन्त बालिका-रूपमें थी, प्रियतम!
फिर सरक अङ्कसे पड़ी और शिशुओंमें जा बैठी, प्रियतम॥ ५०॥

सीमाविहीन अचरजमें थी डूबी तीनों बहिनें, प्रियतम!
है स्वप्न-घटित घटना अथवा हो रही सत्य यह है, प्रियतम!
बन गया असंभव था निर्णय कर लेना वहाँ इसे, प्रियतम!
जडिमा प्रत्येक रोममें थी तीनोंके भर आयी, प्रियतम॥ ५१॥

यन्त्रित-से हुए, उधर शिशु वे थे खेल लगे करने, प्रियतम!
शाखा-चन्द्रमा-न्यायसे ही अभिराम दृश्य कह दूँ, प्रियतम!
दृग नचा-नचाकर तीनों ही क्रमशः माताओंके, प्रियतम!
कण्ठोंसे लगकर झूल उठे हँस-हँसकर मृदुल हँसी, प्रियतम॥ ५२॥

'मेरी मैया है, अहो! नहीं, मेरी मैया यह है' प्रियतम!
अप्रतिम मधुर वाणी यह थी तुतलायी गूँज उठी, प्रियतम!
केवल अलिन्दमें नहीं, भूत-भावी त्रिभुवन जनके, प्रियतम!
प्राणोंमें, जो हैं जुड़े हुए तुम नित्य नील घनसे, प्रियतम॥ ५३॥

आखिर जब बात परस्पर यह तीनोंकी तीनों ही, प्रियतम!
मैया हैं, तीनों शिशुओंने ली मान फुल्ल दृगसे, प्रियतम!
मधुमय, अनन्त सुखमय, पावन कौतुक वह बदल गया, प्रियतम!
आँखें बदलीं माताओंकी सुन करके क्रन्दन-सा, प्रियतम॥ ५४॥

वैसी ही माया फैल गयी, वैसी प्रतीति सबको, प्रियतम!
होने लग गयी, लोकवत् ही मानो वह जन्मी थी, प्रियतम!
आनन्द सिन्धु उमड़ा, सब कुछ जन्मोचित कृत्य हुए, प्रियतम!
विस्मित वे किन्तु तीन जननी रह-रहकर हो जातीं, प्रियतम॥ ५५॥

पूनोतक रानी वहीं रही परिवाके दिन सहसा, प्रियतम!
शङ्कित सब हुए, नगर न कहीं हो जाय नष्ट कल ही, प्रियतम!
नररूप बने मनुजादोंका दल था आनेवाला, प्रियतम!
अतएव महारानीने दी यह राय-'सभी चल दो', प्रियतम॥ ५६॥

सर्वथा असंभव है उनसे भिड़कर हम जयी बनें, प्रियतम!
है नगर निरापद केवल यह मेरा ही भूतलमें, प्रियतम!
अनुकम्पा है जगदम्बाकी, साहस न किसीमें है, प्रियतम!
जो करे अनिष्ट वहाँके लघु उन कीट-भृङ्गका भी, प्रियतम ॥ ५७ ॥

इसलिये तुरन्त वहीं लेकर सबको जाऊँगी मैं, प्रियतम!
आबाल-वृद्ध पशु-पक्षीतक कर दें प्रस्थान सभी, प्रियतम!
भय करें न तनिक, कहीं पथमें वे ध्वंस करें हमको, प्रियतम!
हैं सदय जगन्माता मुझपर, रक्षा कर लेंगी वें, प्रियतम ॥ ५८ ॥

गति एकमात्र थी यही चलें वे प्रातःसे पहले, प्रियतम!
सामान शकटमें भर जितना संभव था भर लेना, प्रियतम!
लेंगे सँभाल आकर फिर, यदि संभव होगा आना, प्रियतम!
ऐसा निश्चय करके होकर निर्मोही जड़ धनसे, प्रियतम ॥ ५९ ॥

इस भाँति विदा करके सबको, सबके पीछे रानी, प्रियतम!
कहकर 'जय देवि दयामयि जय जगदम्बे जय ललिते' प्रियतम!
सुविशाल एक रथमें दोनों बहिनोंको शिशुओंको, प्रियतम!
ले साथ चलीं निर्भय मानो भगवती जा रही हों, प्रियतम ॥ ६० ॥

वे अहो न जाने कैसे थे पहुँचे सब-के-सब ही, प्रियतम!
केवल दो घड़ी लगी एवं दीखी वह राजपुरी, प्रियतम!
सम्मुख जैसे स्वागत सबका हँस-हँसकर थी करती, प्रियतम!
सीमापर खड़े महाराजा थे मंगल कलश लिये, प्रियतम ॥ ६१ ॥

विभुताका हुआ प्रकाश सत्य अद्भुत उस नृपपुरमें, प्रियतम!
सुन्दर-से-सुन्दर पृथक्-पृथक् सबको आवास मिला, प्रियतम!
सपनेमें भी उन सबको जो सुख-सुविधा थी न मिली, प्रियतम!
वह मिली वहाँ वे भूल गये पहले निवासथलको, प्रियतम ॥ ६२ ॥

अवसान वर्षका हुआ, पुनः आयी पावस ऋतु थी, प्रियतम!
अष्टमी भाद्र शुक्लाकी थी, रानी थी पीहरमें, प्रियतम!
मध्याह्न हुआ था नहीं अभी, थी देर दण्ड दोकी, प्रियतम!
थे अचक महाराजा पहुँचे अपने श्वसुरालयमें, प्रियतम॥ ६३॥

था उदर महारानीका फिर तेजोमय परम बना, प्रियतम!
हेमन्त-सम्पदासे जब थी भूषित यह धरा हुई, प्रियतम!
नौ मास पूर्व था मार्गशीर्ष, अष्टमी शुक्लकी थी, प्रियतम!
प्रातःकी वेला थी, रानी देवी मन्दिरमें थीं, प्रियतम॥ ६४॥

श्री-प्रतिमाके पदपर जो थी कुसुमावलि पड़ी उसे, प्रियतम!
करमें ले दृगसे छुला-छुला अपसारित थीं करती, प्रियतम!
थे नहीं अभी राजा आये अर्चनके लिये वहाँ, प्रियतम!
कर रही अकेली रानी थीं पूजाकी तैयारी, प्रियतम॥ ६५॥

दीखा यह अकस्मात उनको, हँस पड़ीं महादेवी, प्रियतम!
फिर अहो! उरस्थल उनका था क्रमशः खुलता जाता, प्रियतम!
अञ्चल वह परदा-सा होकर बायें-दायें सरका, प्रियतम!
बन गया द्वार उससे निकली मनको हरनेवाली, प्रियतम॥ ६६॥

सुन्दरी अनिर्वचनीय एक कन्या गोरी-भोरी, प्रियतम!
रानीके कुन्तलकी लटको करमें लेकर बोली, प्रियतम!
'री मैया!' अहा! सुधास्यन्दी स्वर था मीठा कितना, प्रियतम!
रानीमें चेतनता न रही बाहरकी किञ्चित् भी, प्रियतम॥ ६७॥

भीतरकी आँख किन्तु उनकी थी देख रही घटना, प्रियतम!
देखी उनने जो थी उसका संकेत भले कर दूँ, प्रियतम!
द्रुम एक परम रमणीय खड़ा पुष्पित कदम्बका था, प्रियतम!
थी नित्य किशोरी एक और था एक किशोर वहाँ, प्रियतम॥ ६८॥

उन दोनोंकी ही ओर दृष्टि करके जगदम्बा थीं, प्रियतम!
कहती-"हे सती! आज कर ले दर्शन मेरे उरका, प्रियतम!
सच्चिदानन्द, असमोर्ध्व और जो भगवत्ताका भी, प्रियतम!
है सार-मूल मधुरिमा, यही नीली-पीली द्युति है, प्रियतम॥ ६९॥

रसमय, संविद्, केवल अद्वय, जो नील-पीतमय है, प्रियतम!
यह नित्य हृदय मेरा, जिसमें हूँ लीन हुई रहती, प्रियतम!
लीलारस पीता हुआ नित्य जो युग्म रूपमें है, प्रियतम!
रहकर दो, नित्य एक जो है, दृग-विषय हुआ वह है,प्रियत॥ ७०॥

यह नित्य किशोरी ही तुझसे बोली थी, 'री मैया!' प्रियतम!
पीयेगी दूध सुधामय यह तेरे पयोधरोंका, प्रियतम!
यह नित्य किशोर किन्तु तेरी जो प्राणसखी वह है, प्रियतम!
उसका पी लेगा दूध, तभी आयेगी यह पीने, प्रियतम॥ ७१॥

यह नित्य समाया रहता है उसके प्राणोंमें ही, प्रियतम!
यह नित्य समायी रहती है तेरे ही प्राणोंमें, प्रियतम!
तुम दोनों भूल गयी हो यह इनकी ही इच्छासे, प्रियतम!
अब याद करा देती हूँ मैं, जय हो तुम दोनोंकी, प्रियतम॥ ७२॥

दिव्यातिदिव्य सौरभ अनुपम तेरे इन केशोंसे, प्रियतम!
हो रहा यहाँ प्रसरित अब है, आ चुके नृपति भी हैं, प्रियतम!
संकल्प पवित्र और उनके मनमें यह जाग उठा, प्रियतम!
सन्तति हो एक पुनः ऐसी सुरभित अलकोंवाली, प्रियतम॥ ७३॥

अनुभूति किन्तु अपनी यह तुम राजासे मत कहना, प्रियतम!
रोने जब फूट-फूटकर वे रजनीमें आज लगें, प्रियतम!
कहकर-'रानी हे! पतन हुआ, मेरा व्रत नष्ट हुआ' प्रियतम!
इतना-सा तब कहना-'जाकर जगजननीसे पूछो' प्रियतम॥ ७४॥

दूँगी मैं बता-दिखा बातें आगेकी पीछेकी, प्रियतम!
प्रेरित मत किन्तु भला करना, वे कहें पुनः उनको, प्रियतम!
सुखकी प्रतिपल नवीन लहरें, प्लावित तेरे नृपके, प्रियतम!
प्राणोंको नित्य करें, सच है वाणी त्रिकाल मेरी' प्रियतम॥ ७५॥

इतनेमें दृश्य तिरोहित यह हो गया, जगीं रानी, प्रियतम!
अर्चनमें योग न दे पायीं, उस दिन पगली-सी थीं, प्रियतम!
था प्रथम पहर जब बीत गया उस दिनकी रजनीका, प्रियतम!
रानी-नृप शयन-भवनमें थे हो भावमग्न बैठे, प्रियतम॥ ७६॥

राजाके तनके कण-कणमें ऐसी थी ज्योति भरी, प्रियतम!
वाणी क्या जिसे कहे, मन भी छू पाया नहीं कभी, प्रियतम!
थे नयन निमीलित-उन्मीलित रह-रहकर हो जाते, प्रियतम!
प्राणोंमें उनके संवेदन कैसा था तुम जानो, प्रियतम॥ ७७॥

दक्षिण कर रानीके उरपर, सिरपर कर वाम तथा, प्रियतम!
भावाभिभूत नृपने जैसे था रखा यन्त्रवत् ही, प्रियतम!
संक्रमित उसी क्षण तेजपुञ्ज रानीके अङ्गोंमें, प्रियतम!
हो गया, तुरन्त सिमटकर फिर उदरस्थलमें जागा, प्रियतम॥ ७८॥

संज्ञाविहीन अवनीश हुए रानीकी गोदीमें, प्रियतम!
थे पड़े तीस पलतक, जगकर वैसे ही फिर रोये, प्रियतम!
उन महिमामयी जगत्रयकी जननीने तब उनको, प्रियतम!
दिखला दी भूत-भविष्यतकी घटना, वे मुग्ध हुए, प्रियतम॥ ७९॥

उसका ही था परिणाम, नृपति थे अकस्मात आये, प्रियतम!
जाया-जन्मस्थलमें स्वागत करनेके लिये अहा! प्रियतम!
असमोर्ध्व महामहिमामयके प्राणोंकी देवीका, प्रियतम!
बेटी हो उनकी प्रकट अभी होनेवाली जो थीं, प्रियतम॥ ८०॥

केवल नृप नहीं, धराके जो मस्तकमणि मुनिगण थे, प्रियतम!
जो स्वर्लोकोंके, भुवर्लोक, पन्नगतलतकके थे, प्रियतम!
प्रेरित हो अन्तर्यामीसे दौड़े आये सब थे, प्रियतम!
जैसे थे प्राय: वैसे ही, कुछ रूप धरे भी थे, प्रियतम॥ ८१॥

थे तपन गगनमें चमक रहे, जन-सुखद अतीव बने, प्रियतम!
अवनी प्रतिपल ही थी धारण कर रही नयी सुषमा, प्रियतम!
वर्षा ॠतु थी, पर सलिल वहाँ सर-सरित-निर्झरोंका, प्रियतम!
दो घड़ी हुई, था बना अतुल उज्ज्वलतम मोती-सा, प्रियतम॥ ८२॥

शीतल-सुगन्ध-मन्थर समीर छू-छू करके सबको, प्रियतम!
कानोंमें था कहता मानो—'देखो धीरे-धीरे, प्रियतम!
रस लहर एक-से-एक बड़ी इस भावसिन्धुमें है, प्रियतम!
आनेवाली, तुम अवगाहन निरवधि करते रहना' प्रियतम॥ ८३॥

थे अश्व किरणमाली-रथके जब ठीक मध्य नभमें, प्रियतम!
आये, बस, उसी सन्धिपर थी आयी कन्या नृपकी, प्रियतम!
मंगलमय परम जुड़े जब थे कालोचित योग सभी, प्रियतम!
रसराज और जब महाभाव दोनों थे एक हुए, प्रियतम॥ ८४॥

कोई न चितेरा हुआ यहाँ, आगे न कभी होगा, प्रियतम!
जो चित्र सलोनी नृपकी उस बेटीका सही लिखे, प्रियतम!
लोचन जिनके हों तुम मेरे प्राणाधिकके पदकी, प्रियतम!
नख-चन्द्र-चन्द्रिकासे भासित, वे देख भले ही लें, प्रियतम॥ ८५॥

दो बार अहो! वह मुख शोभा, फिर वह उमंगधारा, प्रियतम!
प्राणोंमें जो थी उमड़ चली, देखी जिनने उनके, प्रियतम!
एवं उसका प्रकाश बाहर कैसे था हुआ वहाँ, प्रियतम!
निर्लज्ज हुई उस ओर भला किञ्चित् कह आयी हूँ, प्रियतम॥ ८६॥

अब तो इतना-सा कहूँ, अहा! उन दिव्य अतिथियोंने,प्रियतम!
रानीने, बहिनोंने, अगणित चर-अचर लोचनोंने, प्रियतम!
कन्याको, रसके प्लावनको देखा, बस, देखा था, प्रियतम!
था काल मकर, रानी लौटीं पीहरसे ले पुत्री, प्रियतम॥ ८७॥

अब गये पचीस महीने शुभ दिन सात, अष्टमीसे, प्रियतम!
प्रातःसे लेकर जब नूतन होता प्रभात फिर था, प्रियतम!
उन आठों पहरोंमें प्रतिपल नृप-नगरोंमें जो थीं, प्रियतम!
भावोंकी नव तरंग उठती, संभव है क्या कहना, प्रियतम॥ ८८॥

जो हो इतने दिनकी जब वह हो चुकी लाडिली थी, प्रियतम!
थे महीपालके प्राणोपम जो एक धर्मभाई, प्रियतम!
'गोपेश' अहो! जिनकी पदवी विख्यात भुवनमें थी, प्रियतम!
हो रहा शरद पूनोंका था उत्सव उनके गृहमें, प्रियतम॥ ८९॥

जिस दिन वह नृपति तनूजा थी अवनीतलपर आयी, प्रियतम!
उसके ही पंद्रह दिवस ठीक पहले उस रजनीमें, प्रियतम!
उन गोपवर्यको महामहिम ऐसा था पुत्र हुआ, प्रियतम!
जो था अहीर-कुल-उजियारा, सबके दृगका तारा, प्रियतम॥ ९०॥

तबसे उन धर्मभाइयोंने निश्चय था किया यही, प्रियतम!
ये शरद वसन्त, सभी ऋतुमें होते उत्सव जो हैं, प्रियतम!
आगे अब हम सर्वदा करें दोनों कुल मिलकर ही, प्रियतम!
वे भले वनस्थलमें हों या नृपभवन किसीमें हों, प्रियतम॥ ९१॥

इसलिये नृपति थे सपरिवार आये अहीरपुरमें, प्रियतम!
आयी थी प्रजा और तो क्या दस दिन वयका शिशु भी, प्रियतम!
मानो नृपपुर उठ आया था पूरा-का-पूरा ही, प्रियतम!
उन गोप-नगर-नर-नारीका उत्साह निराला था, प्रियतम॥ ९२॥

गोपेश और अवनीश अभी नारायण विग्रहका, प्रियतम!
चौसठ उपचारोंसे अर्चन करके कृतकृत्य हुए, प्रियतम!
उद्दाम नृत्यके सहित अहो! थे नाम गान करते, प्रियतम!
स्वर-में-स्वर सभी मिलाकर थे वैसे ही पुरवासी, प्रियतम॥ ९३॥

बीती ही थी वह अर्ध निशा, पल पाँच हुए, बस, थे, प्रियतम!
गोपेश-पुत्रको ले आयीं रानीकी बहिन वहाँ, प्रियतम!
चञ्चल बालक वह उतर पड़ा जल्दीसे गोदीसे, प्रियतम!
भयहीन सदा वह था, झटसे घुस पड़ा भीड़में, हे प्रियतम॥ ९४॥

वह नृपतिपुत्रको 'श्रीभैया' संबोधित था करता, प्रियतम!
गोपेश-वसनको खींच चपल करसे हँसकर बोला, प्रियतम!
'बाबा! भेजा है मैयाने मुझको, तुमसे कह दूँ, प्रियतम!
श्रीभैयाको है एक हुई छोटी फिर बहिन अभी' प्रियतम॥ ९५॥

उस बालककी वाणीमें था टोना-सा भरा सदा, प्रियतम!
वह भाव-समाधि अहो! सबकी टूटी निमेषमें ही, प्रियतम!
नारायणका वह शारदीय उत्सव उन नरपतिकी, प्रियतम!
कन्याकी महा बधाईमें परिणत हो गया वहाँ, प्रियतम॥ ९६॥

इस भाँति महारानी क्षणमें मानो हों घटी अभी, प्रियतम!
इन उपर्युक्त घटनाओंको थीं देख गयी फिरसे, प्रियतम!
'मैया! क्या है तू सोच रही', कहकर जब पुत्रीने, प्रियतम!
उनके अञ्चलको खींचा था, टूटा तब सच सपना, प्रियतम॥ ९७॥

पुत्रीके अधर-कपोलोंपर वत्सलताके रससे, प्रियतम!
पूरित वह चिह्न अनेक बार अङ्कित कर फिर अपनी, प्रियतम!
छोटी बेटीको, सखियोंको, जो वहाँ बड़ीकी थीं, प्रियतम!
वैसे ही रस देकर, लेकर सबको थीं वे आयी, प्रियतम॥ ९८॥

अर्चन-मन्दिरमें राजा थे ध्यानस्थ हुए बैठे, प्रियतम!
रानीने बतला दी उनको दुहिताकी जो रुचि थी, प्रियतम!
झर-झरकर लगे नयन बहने नरपाल निहाल हुए, प्रियतम!
मानसतलमें वह बात जगी देवीकी कही हुई, प्रियतम॥ ९९ ॥
'होकर जब सात वर्षकी यह हँसकर इच्छा कर ले, प्रियतम!
मेरे वनमें आनेकी, तब समझो यह खेलेगी, प्रियतम!
वह खेल अनन्त कालतक जो त्रिभुवन थिर जङ्गमको, प्रियतम!
पावनतर, पावनतम कर-कर,निधि नित्य बने सबकी' प्रियतम॥ १०० ॥

गद्गद थी गिरा, नृपतिने थी दी अनुमति जानेकी, प्रियतम!
सबको भूषण परिधानोंसे रानीने सजा दिया, प्रियतम!
वे चलीं तुरन्त उसी वनमें प्रसरित सच हो जैसे, प्रियतम!
हो तरल पुराण नित्य कविके नव मनकी सुन्दरता, प्रियतम॥ १०१ ॥

प्रथम शतक समाप्त

॥ विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ॥

द्वितीय शतक

पूरबकी शिखरावलि-मण्डित गिरि था सीमा रचता, प्रियतम!
काननसे जुड़ी प्रतीचीमें प्रसरित नीली सरिता, प्रियतम!
सुविशाल राजपथ उत्तरमें द्रुमजालोंसे छाया, प्रियतम!
चलकर कोसोंतक छू लेता उस शैल रत्नमयको, प्रियतम ॥ १०२ ॥

निर्झर झरकर पर्वतसे लघु था स्रोत एक बहता, प्रियतम!
चञ्चल-सा संगम था उसका श्यामा तरंगिणीसे, प्रियतम!
उस वनके दक्षिणमें रहकर कल-कल करता हँसता, प्रियतम!
पावसमें भी उसकी धारा मुक्ता बिखेरती थी, प्रियतम ॥ १०३ ॥

पगडंडी सभी दिशाओंमें सीधी-टेढ़ी जाती, प्रियतम!
रमणीय तृणोंसे, गुल्मोंसे हो जाती लुप्त कहीं, प्रियतम!
सौरभके दानी पुष्पोंसे लोभित होकर भौंरा, प्रियतम!
गा-गाकर था उड़ता, करता गुञ्जित अरण्यको, हे प्रियतम ॥ १०४ ॥

पक्षी-समूहका कलरव था संकेतदान करता, प्रियतम!
काननवासिनी तरुणियोंको रसपाठ पढ़ाता था, प्रियतम!
जीवनकी धारा किधर मुड़े भावी क्या है किसकी, प्रियतम!
सच्चा प्रतीक इसका वह था, आदर वे सब करतीं, प्रियतम ॥ १०५ ॥

उस वनके किसी चतुष्पदमें हिंसाकी वृत्ति न थी, प्रियतम!
दिन रात परस्पर निर्भय वे सुखसे घूमा करते, प्रियतम!
उनमें मुनियोंकी दृष्टि अहो! थी स्वतः उतर आयी, प्रियतम!
मानो एकात्मभाव मनमें वे लिये हुए सब थे, प्रियतम ॥ १०६ ॥

जो दरी एक-से-एक बड़ी शोभामें गिरिकी थी, प्रियतम!
उसमें वे जब करने लगते विश्राम आँख मूँदे, प्रियतम!
उनकी नीरवता-अचपलता संचारित कर देती, प्रियतम!
पूरी अटवीके प्राणोंमें मुद्रा समाधि जैसी, प्रियतम॥ १०७॥

उस ओर शैलके कण-कणमें मानो चेतनता थी, प्रियतम!
वह खड़ा सतत, देखा करता ऊँचा सिर किये हुए, प्रियतम!
क्या है उस वनमें, कहाँ किसे क्या आवश्यकता है, प्रियतम!
फिर वहीं खड़े रहकर ही वह सबको सँभाल लेता, प्रियतम॥ १०८॥

अक्षत तो एक ओर रहती वह वीरवधूटी भी, प्रियतम!
फिर भी था यथासमय देता सबको आहार भला, प्रियतम!
जिसकी जिसपर चलती रुचि थी, उसके समीप रखता, प्रियतम!
उसका इच्छित फल और उसे सुखसे वह भर देता, प्रियतम॥ १०९॥

वह करे प्रौढ़ जनगणका ही आदर यह बात नहीं, प्रियतम!
शिशुतकको नीलम, लाल और पुखराज राशि देता, प्रियतम!
समता, धीरता, प्यार-वितरण निरुपम था शैल लिये, प्रियतम!
उसके दृगमें ही आँख मिला वनका वह चित्र लिखूँ, प्रियतम॥ ११०॥

ललिता कुञ्जका वर्णन—
तरुसे रूठी-सी लता जहाँ अवनीपर थी फूली, प्रियतम!
द्रुम कर-पल्लवसे छू उसकी बाँहें, झुककर कहता, प्रियतम!
प्रेमिल आँखोंका ही भ्रम है, थी छाया ही उरमें, प्रियतम!
इन शशि-सुमनावलिकी झलमल रह-रहकर जो करती, प्रियतम॥ १११॥ क
यत्र उज्ज्वल-सत्त्वमयी-अमृता निम्बं समाश्लिष्य प्रसरति॥ ११२॥ ख

क. ललिताका विशुद्ध माधुर्यमय खण्डिताभाव विभूषित रूप
ख. ललिताका प्रच्छन्न रससम्पुटित खण्डिताकी छाया लिये महामाया रूप

वटं शंखालु इत्याख्या वल्लरी। ॥ ११३ ॥ ग

करीराणां मूलदेशे श्यामाकतृणराशिः। ॥ ११४ ॥ घ

कामिनी प्रजापतिकी क्रीड़ा वनदेवीसे कहती, प्रियतम!
रजनीगन्धा अपना अनुभव शुचि गन्धवाहसे, हे प्रियतम!
थी बात कुमुदिनी बतलाती हिमकरसे उस अलिकी, प्रियतम!
जो मत्त हुआ बँधकर सुखसे था सुप्त कोषमें, हे प्रियतम ॥ ११५ ॥ ङ

सूर्यमुखी स्वात्मवृत्तं अंशुमालिनं प्रति विज्ञापयति ॥ ११६ ॥ च

अमला प्रवाहिणी म्लान एक पतिको थी खोज रही, प्रियतम!
जब मिला नहीं, तब वह दीना पीछेकी ओर मुड़ी, प्रियतम!
पर दरी महीधरकी बोली—'री! यहाँ कृष्णवर्णा, प्रियतम!
दूती है तुमको जोह रही', जा मिली अतः उससे, प्रियतम ॥ ११७ ॥ छ

चन्दनादिनवतरुनिर्मितनवनिकुञ्जावलिः। ॥ ११८ ॥ झ

पनसादिदशवृक्षैर्विरचितदशकुञ्जपंक्तिः। ॥ ११९ ॥ झ

यत्र कालरूपो रविरपि कल्पद्रुमस्य छायायां प्रतिष्ठिताया:
देवीप्रतिमायाः पादपीठमुपाश्रितो वर्तते। ॥ १२० ॥ ञ

तस्य उज्ज्वलनीलमणिवत् प्रकाशदानम्। ॥ १२१ ॥ ट

ग. ललिताका प्रच्छन्न रससम्पुटित खण्डिताकी छाया लिये जगज्जननी रूप

घ. ललिताका प्रच्छन्न रससम्पुटित खण्डिताकी छाया लिये योगमायाका रूप

ङ. ललिताका जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-भावापन्न रूप

च. ललिताका तुर्यतत्वात्मक रूप

छ. ललिताका गङ्गायमुनात्मक रूप

ज. ललिताका विशुद्ध रसम्पुटित प्रच्छन्न नवदुर्गात्मक रूप

झ. ललिताका विशुद्ध रसम्पुटित प्रच्छन्न दशविद्यात्मक रूप

ञ. ललिताका विशुद्ध रससम्पुटित भगवती महात्रिपुरसुन्दरी रूप

ट. ललितकी विशुद्ध रसम्पुटित भगवता

श्रीफलकुञ्जं प्रति प्रदक्षिणत्वाचरणं च। ॥ १२२ ॥ ठ

विशाखा कुञ्जका वर्णनः—

कुसुमित कचनार, अगस्त्य तथा सहिजन, अशोकके, हे प्रियतम!
गुच्छोंसे थे सुन्दर उरोज भूषित थल-पद्माके, प्रियतम!
धरणीके वक्षस्थलपर था वह पारिजात लिखता, प्रियतम!
कुछ चित्र विचित्र मनोहर, विधु था देख मुग्ध जिसको, प्रियतम ॥ १२३ ॥

यत्र वृक्षाणां निसर्गतः इव वल्लीदासत्वाचरणम् ॥ १२४ ॥

आम्रनिकुञ्जावलिः। ॥ १२५ ॥

बीजपूरकुञ्जपंक्तिः। ॥ १२६ ॥

कदलीवनम्। ॥ १२७ ॥

दाड़िमनिकुञ्जावलिः। ॥ १२८ ॥

कन्दुकक्रीड़ास्थली। ॥ १२९ ॥

मणिमयविश्रामगृहम्। ॥ १३० ॥

चित्रा कुञ्जका वर्णन—

लजवन्ती करती थी छिपकर अभिसार तरणि रहते, प्रियतम!
मधुपावलिका उड़ना लखकर थी भ्रमित हुई उससे, प्रियतम!
हैं एक नहीं, शत लक्ष बने मेरे प्राणाधिक वे, प्रियतम!
मूँदी उसने जब आँख, लगा, वे छोड़ गये मुझको, प्रियतम ॥ १३१ ॥

शतपत्रवनम्। ॥ १३२ ॥

तुलसीकाननम्। ॥ १३३ ॥

दूर्वाक्षेत्रम्। ॥ १३४ ॥

पूगपंक्तिः। ॥ १३५ ॥

ठ. ललिताका विशुद्ध रसमय श्रीमातृत्व

तालावलिः। ॥ १३६ ॥

खर्जूरश्रेणी। ॥ १३७ ॥

कर्णिकारवनम्। ॥ १३८ ॥

इन्दुलेखा कुञ्जका वर्णन—
उन कुन्द बहिनके गालोंपर थे कण न ओसके वे, प्रियतम!
मैं अङ्ग सजाकर यह अपना ठगती हूँ अपनेको, प्रियतम!
वे आयेंगे, है सपना ही, यह टूटेगा क्षणमें, प्रियतम!
है प्रेम दम्भ मेरा, वह थी इस चिन्तासे रोती, प्रियतम ॥ १३९ ॥

आम्रातकावलिः। ॥ १४० ॥

तिन्तिडीवनम्। ॥ १४१ ॥

करौंदाइत्याख्याद्रुमाः। ॥ १४२ ॥

दमनकवनम्। ॥ १४३ ॥

वैजयन्तीकाननम्। ॥ १४४ ॥

शिंशपाश्रेणी। ॥ १४५ ॥

उत्पलवनम्। ॥ १४६ ॥

चम्पकलता कुञ्जका वर्णन—
चम्पा पीले फूलोंकी थी साड़ी पहने गाती, प्रियतम!
वह राग, सुना था नहीं वहाँ जो कभी किसीने भी, प्रियतम!
मोहिनी शक्ति उसमें अवश्य कुछ भरी अनोखी थी, प्रियतम!
प्रणयी मिलिन्द था एक हुआ मिटकर विधान विधिका, प्रियतम ॥ १४७ ॥

मधुकपंक्तिः। ॥ १४८ ॥

गन्धराजवनम्। ॥ १४९ ॥

किंशुकश्रेणी। ॥ १५० ॥

इंगुदनिकुञ्जावलिः। ॥ १५१ ॥

पाटलजम्बुद्रुमाः। ॥ १५२ ॥

मन्दारावलिः। ॥ १५३ ॥

बर्बरीवनम्। ॥ १५४ ॥

रंगदेवी कुञ्जका वर्णन—

थी रंग बिरंगे वर्णोंमें मल्लिका खिली ऐसी, प्रियतम!
जो लुप्त बुद्धि कर देती थी नभमें उड़ते मुनिकी, प्रियतम!
उनकी तो बात दूर, मोहित पालक वह था उनका, प्रियतम!
ऐसा कि आजतक हाल नहीं कोई बतला पाया, प्रियतम ॥ १५५ ॥

शमीसमूहः। ॥ १५६ ॥

आमलकद्रुमाः। ॥ १५७ ॥

अर्कवनम्। ॥ १५८ ॥

नीपपंक्तिः। ॥ १५९ ॥

शिरीषश्रेणी। ॥ १६० ॥

कपित्थकुञ्जावलिः। ॥ १६१ ॥

जम्बीरवनम्। ॥ १६२ ॥

तुङ्गविद्या कुञ्जका वर्णन—

मालती-लता सद्मोंपर थी फूली इठलाती-सी, प्रियतम!
सुनकर समीरकी साँय-साँय उत्कण्ठित थी होती, प्रियतम!
'वे ही होंगे' प्यारा जब पर था नहीं दीखता हे, प्रियतम!
वह बात झूरकर यूथीसे करती रह-रहकर थी, प्रियतम ॥ १६३ ॥

अश्वत्थश्रेणी। ॥ १६४ ॥

प्लक्षवनम्। ॥ १६५ ॥

तगरइत्याख्यद्रुमाः। ॥ १६६ ॥

सालावलिः। ॥ १६७ ॥

देवदारुवनम्। ॥ १६८ ॥

भूर्जवनम्। ॥ १६९ ॥

जालकावलिः। ॥ १७० ॥

सुदेवी कुञ्जका वर्णन—

थी जपा खड़ी अवनत मुख हो, आँखोंमें थी लाली, प्रियतम!
था पास खड़ा नीला तमाल दीनता व्यथा कहता, प्रियतम!
पुरवैयासे परिचालित हो, वह पुनः पुनः झुकता, प्रियतम!
जाती थी पश्चिममें पर, वह संध्या होते रोती, प्रियतम ॥ १७१ ॥

उदुम्बरपंक्तिः। ॥ १७२ ॥

बदरीवनम्। ॥ १७३ ॥

वानीरनिकुञ्जावलिः। ॥ १७४ ॥

वेणुवनम्। ॥ १७५ ॥

अर्जुनसमूहः। ॥ १७६ ॥

यत्र अशेषोद्‌भिज्जजातीयप्राणिनां सन्निवेशः। ॥ १७७ ॥

यथावसरं यथास्थानं आविर्भावः तिरोभावश्च। ॥ १७८ ॥

राधा कुण्डका वर्णन—

लहरें सरमें धारा-सी थीं क्रमशः उठती-गिरती, प्रियतम!
चञ्चल मराल होकर उनसे, भामिनी मरालीसे, प्रियतम!
कहता—'प्यारी! देखो, ये हैं दे रही पाद्य तुमको, प्रियतम!
फिर अर्घ्य-आचमन भी पूजा स्वीकार करो इनकी, प्रियतम॥ १७९॥

अपने प्राणोंके रससे ये तुमको नहलाती हैं, प्रियतम!
अपने प्राणोंकी सत्ताका परिधान धराती हैं, प्रियतम!
चारों कूलोंके द्रुमसे जो हैं गुच्छ सुमन आते, प्रियतम!
इनमें, उनका ही आभूषण तुमको पहनाती हैं, प्रियतम॥ १८०॥

उरपर बिखरे परागकी हैं अर्पित सुगन्ध करती, प्रियतम!
उरपर विकसित सरोज लेकर ये फूल चढ़ाती हैं, प्रियतम!
अतिशय उमंगकी किरणोंसे आकर्षित हो, इनका, प्रियतम!
उर भाप सदृश उड़कर जो है बनता है धूप वही, प्रियतम॥ १८१॥

इनके भीतर दिनमें जो हैं दिनकरकी परछाँही, प्रियतम!
रजनीमें तारक-शशधरकी, वे ही हैं दीप भला, प्रियतम!
हृत्पद्मकर्णिकाके भीतर उज्ज्वल रस-वर्ण लिये, प्रियतम!
जो वस्तु सुसंचित है, उससे नैवेद्य निवेदन है, प्रियतम॥ १८२॥

उज्ज्वल जल लेकर पुनः अहो! आचमन कराती हैं, प्रियतम!
उन अरुण उत्पलोंके दलसे रचती तमोल ये हैं, प्रियतम!
उज्ज्वल रस नित्य उरस्थलका है तर्पणीय उनका, प्रियतम!
जो रागभरा स्वर है उरका, मधुरस्तव है इनका, प्रियतम॥ १८३॥

अपने स्वरूपमें नित्य अहो! ये सभी दिशाओंमें, प्रियतम!
जो घूम रही हैं, इनका शत वह है प्रणाम ही तो' प्रियतम!
इनके रहस्यमय अर्चनके उपचार मनोहर हैं, प्रियतम!
यों था प्रतिदिन वरटानायक मनुहार गीत गाता, प्रियतम॥ १८४॥

सुनकर यह गीत भामिनी थी उसकी विमुग्ध होती, प्रियतम!
देकर अपनी नीरव सम्मति नायकपर झुक पड़ती, प्रियतम!
दोनों ही कण्ठ मिलाकर थे लहरोंमें धँस पड़ते, प्रियतम!
आनन्द मत्त होकर लहरें कूलोंसे टकरातीं, प्रियतम॥ १८५॥

भीतर-ही-भीतर उनके थे दोनों चलते रहते, प्रियतम!
ले टोह नीर-विहगी-दल था ऊपर-ऊपर चलता, प्रियतम!
वह दाँव-पेंच दोनों दलमें सुन्दर जो चल पड़ता, प्रियतम!
उसके चित्रणकी तूली वह जा पड़ी नीलसरमें, प्रियतम॥ १८६॥

था श्याम नीरसे भरा एक गम्भीर सरोवर, हे प्रियतम!
पा सका न कोई थाह, थके करके प्रयास योगी, प्रियतम!
जो श्वास रोक सकते थे युग-युगतक बूड़े उसमें, प्रियतम!
वे भी हारे निकले उदास इतना अगाध जल था, प्रियतम॥ १८७॥

वह पुञ्ज समग्र ईशताका जो, धर्म और यशका, प्रियतम!
श्री-ज्ञान-विराग सत्यका है उसके कण-कणमें था, प्रियतम!
उसके जलसे वल्लरियाँ थीं वनकी सींची जाती, प्रियतम!
लगते थे फूल और उनमें निरुपम सौरभवाले, प्रियतम॥ १८८॥

उसका जल छूते ही तनका सब रंग बदल जाता, प्रियतम!
पीनेवाली कण एक इतर सब राग भूल जाती, प्रियतम!
उसको निहारते ही आँखें होती थीं श्याममयी, प्रियतम!
जो भी फिर कहीं कभी दीखे, नीला-नीला लगता, प्रियतम॥ १८९॥

जिसके कानोंमें भी उसकी चर्चा थी पड़ जाती, प्रियतम!
उसको उसके अतिरिक्त बात कोई न सुहाती थी, प्रियतम!
लेकर समीर सौरभ उसका जाता था जहाँ-जहाँ, प्रियतम!
सब जीव वहाँके उसपर थे न्योछावर हो जाते, प्रियतम॥ १९०॥

निर्माण पीतमणिसे उसके चारों कूलोंका था, प्रियतम!
प्रतिदिन जल बढ़ धारा बनकर था चार बार बहता, प्रियतम!
पहले उत्तरकी ओर वेग उसका ऐसा होता, प्रियतम!
मानो श्रीफलकी कुञ्जोंको खण्डित कर छोड़ेगा, प्रियतम॥ १९१॥

पूरबमें, अग्निकोणमें फिर चलता प्रवाह जब था, प्रियतम!
होती उसकी गति यों, जैसे जाता हो सुख देने, प्रियतम!
कोई आयी हो दिनमें ही करके अभिसार, उसे, प्रियतम!
या उधर बिलखती हो कोई प्रोषितपतिका, उसको, प्रियतम॥ १९२॥
दक्षिणमें जब चलता, लगता कोई मधूक मधु पी, प्रियतम!
अपने तनका सब भान भुला, चल रहा भटकता हो, प्रियतम!
टकराकर उन-उन तरुओंसे किञ्चित् रुक-सा जाता, प्रियतम!
अन्तश्चेतना वृत्ति फिर भी पथ थी दिखला देती, प्रियतम॥ १९३॥

पश्चिममें बढ़ते ही होता अतिशय बेहाल भला, प्रियतम!
पीले मणियोंकी किरणें थीं उसको समझाती-सी, प्रियतम!
'मैं तो उरमें ही हूँ' धीरज आता न किंतु तब भी, प्रियतम!
यों घूम-घूम वनमें भरता पल-पल नव-नव सुषमा, प्रियतम॥ १९४॥

थे मूर्त हुए अन्यत्र वहाँ वे पुनः किरणमाली, प्रियतम!
हीरकमय विग्रह बनकर थे पूजित अरण्य जनसे, प्रियतम!
मन्दिरके आगे कुण्ड एक था भरा हुआ जलसे, प्रियतम!
विकसित सरोजसे बना रम्य रहता सब ऋतुओंमें, प्रियतम॥ १९५॥

ऐसे कुछ कौशलसे रचना मन्दिरकी थी जिससे, प्रियतम!
होतीं उपलब्ध सदा ऋतुएँ सब उसके कक्षोंमें, प्रियतम!
एवं कोई भी क्यों न भला कितना ही सजग रहे, प्रियतम!
आते ही कोई मोड़, उसे दिग्भ्रम हो ही जाता, प्रियतम॥ १९६॥

रवि-विग्रहकी विशेषता यह सबको लक्षित होती, प्रियतम!
प्रतिदिन जबतक दिनकर नभमें ऊपर उठते रहते, प्रियतम!
तबतक पुखराजराशि उसके नखसे झरती रहती, प्रियतम!
ज्यों ढले उधर वे, रत्न इधर पानी बनने लगते, प्रियतम॥ १९७॥

आराधनके भी समय तथा यह चमत्कार होता, प्रियतम!
अर्चकके प्राण-देह-मन थे तेजोमय बन जाते, प्रियतम!
सत्ता उतने क्षण बच रहती उस तूर्य नित्य रसकी, प्रियतम!
पूजा जिसने-जिसने की थी, सबका अनुभव यह था, प्रियतम॥ १९८॥

छोटा-सा ग्राम एक अद्भुत कासार तीरपर था, प्रियतम!
थे रत्नजटित सब गृह उसमें बसनेवालोंके, हे प्रियतम!
देवीके कृपापात्र वे थे, निर्भय थे सभी सदा, प्रियतम!
राजा-सा जीवन था उनका, पर शीलवान वे थे, प्रियतम॥ १९९॥

जो सिद्धि पवित्र तन्त्र एवं मन्त्रोंसे मिलती है, प्रियतम!
भूषित उससे प्रायः तरुणी थीं सभी गाँववाली, प्रियतम!
जीवनभरका यह किंतु अहो! उनके व्रत निश्चल था, प्रियतम!
मैं कभी स्वसुखके लिये नहीं उपयोग करूँ इसका, प्रियतम॥ २००॥

ऐसी थी प्रीति परस्पर जो, वे एक दूसरीके, प्रियतम!
सुखके निमित्त मर मिटनेको प्रस्तुत हरदम रहतीं, प्रियतम!
सबके ही प्राण सभीमें सच रहते थे स्यूत हुए, प्रियतम!
अन्यत्र न था वह सखीपना, है नहीं, न होगा ही, प्रियतम॥ २०१॥

काननकी उन कुञ्जोंमें वे दिनमें घूमा करतीं, प्रियतम!
नीली-सरिता-तटपर उनका रजनी-विहार होता, प्रियतम!
ऐसी माया थी देवीकी, कोई न जान पाता, प्रियतम!
है गाँव-सरोवर किधर कहाँ, वे नाम धरे क्या हैं, प्रियतम॥ २०२॥

द्वितीय शतक समाप्त

॥ विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ॥

तृतीय शतक

मन्थर गतिसे चलती, हँसती आयी नृपकी पुत्री, प्रियतम!
सोनेकी पुतली-सी, सब थीं घेरे सहचरियाँ, हे प्रियतम!
किरणें बिखेर सुन्दरताकी सब ओर, खड़ी वह थी, प्रियतम!
वनके समक्ष उत्तर मुख हो भोली चितवनवाली, प्रियतम॥ २०३॥

थे गाल-भालपर रहे व्यक्त हो श्रमकण मोती-से, प्रियतम
शीतल बयार झुर-झुर करती थी व्यस्त पोंछनेमें, प्रियतम!
मखमल-सी कोमल दूब हरी लहराती थी हिलती, प्रियतम!
मनुहार धरा करती मानो, 'री! नेक बैठ जा तू', प्रियतम॥ २०४॥

थी त्वरा नृपतिकन्यामें, पर कैसे विश्राम करे, प्रियतम!
आकर्षित था करता वह वन कमनीय दूरसे ही, प्रियतम!
तितली-सी उड़ती जा पहुँची भीतर वह सीमाके, प्रियतम!
मेंहदीकी झाड़ीके पथसे उन सबको साथ लिये, प्रियतम॥ २०५॥

शुभ शकुन बताते खञ्जनको, पहले उसने देखा, प्रियतम!
जो सबसे अधिक सयानी थी सखियोंमें, वह बोली, प्रियतम!
'अप्रतिम यहाँ कोई मंगल, निश्चय होगा, सखि री', प्रियतम!
मनमें नृपकन्याके इससे उत्कण्ठा और बढ़ी, प्रियतम॥ २०६॥

इतनेमें उड़ आया कपोत, अभिनन्दन करने, हे प्रियतम!
वह कण्ठ फुलाकर लगा नृत्य अपना दिखलाने, हे प्रियतम!
'पीहू' करके आया मयूर, उसने तानी छतरी, प्रियतम!
सुन्दर अत्यन्त एक शुक था, प्रणिपात किया उसने, प्रियतम॥ २०७॥

आया वह नीलकण्ठ, अपनी ग्रीवा नीची करके, प्रियतम!
मुख नृपदुहिताकी ओर किये चल पड़ा गुड़क करके, प्रियतम!
आयी बट-तीतरकी टोली, रचना कर मण्डलकी, प्रियतम!
आगत उन सभी अतिथियोंकी करती प्रदक्षिणा थी, प्रियतम॥ २०८॥

वे रंग-बिरंगे कितने थे, क्रमशः विहङ्ग आये, प्रियतम!
उनकी गणना करके कैसे, क्या बतलाऊँ तुमको, प्रियतम!
नानापन अहो! प्रकृतिमें जो है, नित्य सृष्ट होता, प्रियतम!
मानो वह सभी विहग बनकर आया स्वागत करने, प्रियतम॥ २०९॥

हँस-हँसकर नृपतिनन्दिनी थी उनको निहार लेती, प्रियतम!
कहती सहेलियोंसे फिर थी, 'री! क्या दूँ मैं इनको, प्रियतम!
जो प्यार लिये ये आये हैं, वह इनकी ही निधि है, प्रियतम!
मेरा भी रोम-रोम इनपर, है न्योछावर अब तो, प्रियतम॥ २१०॥

भाषा मैं नहीं जानती हूँ इनकी, क्या बात करूँ, प्रियतम!
कोई तुममेंसे भले मुझे बतलाओ तनिक कला', प्रियतम!
इतना कहते ही कीर वही, उड़कर सम्मुख आया, प्रियतम!
सुस्पष्ट मानवी-सी सुमधुर बोलीमें बोल उठा, प्रियतम॥ २११॥

'तुम कहो, राजनन्दिनि! जो भी चाहो कहना हमसे, प्रियतम!
हम तो निहाल सब होंगे ही भर सुधा श्रवणपुटमें, प्रियतम!
अविच्छिन्न कालसे सुखमय यह वनवास हमारा है, प्रियतम!
कानोंमें भरा अमिय-रस यह, सागर बन उमड़ेगा', प्रियतम॥ २१२॥

विस्मयसे कुछ पल नृपपुत्री अपलक चुपचाप रही, प्रियतम!
देखा फिर बड़ी सहेलीको, अद्भुत उस तोतेको, प्रियतम!
कुछ सोच सखी बोली—'शुक है प्रतिपालित कहीं हुआ, प्रियतम!
अनुकरणशील यह जाति सदा खगकी होती ही है', प्रियतम॥ २१३॥

उत्तरसे नृपति तनूजाको सन्तोष न किंतु हुआ, प्रियतम!
बोली—'री! फिर इसने कैसे मेरा परिचय जाना, प्रियतम!
तू पता लगा किसके घर यह है पला और इसकी, प्रियतम!
प्रतिभा स्वभावगत है या यह है रटी हुई विद्या', प्रियतम॥ २१४॥

सहचरी सोचती रही, कीर फिरसे वह बोल उठा, प्रियतम!
अवनीको अरुण चञ्चुसे छू, दृग घुमा-घुमा रससे, प्रियतम!
'हे राजकुमारी! नित्य दास-दासी हैं हम उनके, प्रियतम!
कालिमा-गौरपन निरुपम है, निरवधि तनमें जिनके, प्रियतम॥ २१५॥

जब जितना हमें पढ़ाते हैं वे, तब उतना-सा ही, प्रियतम!
होता है ज्ञान उदय, हम तो हैं यन्त्र सभी उनके, प्रियतम!
यह देवि! पाँवड़ा बिछा हुआ दृगका है स्वागतमें, प्रियतम!
हैं भाग बड़े हम सबके, जो तुम यहाँ पधारी हो', प्रियतम॥ २१६॥

अब रही न विस्मयकी सीमा, राजाकी बेटीके, प्रियतम!
शुकको निहारकर पुनः पुनः, उत्तरकी ओर बढ़ी, प्रियतम!
प्राकृतिक, एक-से-एक बड़ा रमणीय दृश्य आता, प्रियतम!
आँखें उसकी टिक जाती थीं, रह-रहकर वह रुकती, प्रियतम॥ २१७॥

बाहर-बाहरसे इस वनकी जिनने दी थी फेरी, प्रियतम!
उनका वर्णन सुन्दरताका इसकी, शतगुणित हुआ, प्रियतम!
उस राजकुमारीके मनमें अब था पछतावा-सा, प्रियतम!
खेली मैं और-और वनमें, क्यों यहाँ नहीं आयी, प्रियतम॥ २१८॥

सुकुमारी, अब वह थकी हुई दीखी सहचरियोंको, प्रियतम!
चलती-चलती अविराम फँसी बातोंमें, शोभामें, प्रियतम!
कर सकीं उसे यद्यपि सखियाँ सम्मत कठिनाईसे, प्रियतम!
आकर पर वह फिर बैठ गयी, वट-तरुकी छायामें, प्रियतम॥ २१९॥

था शुक भी साथ-साथ आया, डालीपर जा बैठा, प्रियतम!
बतलाने लगा रहस्यभरा, वह मानचित्र वनका, प्रियतम!
क्या-क्या वस्तुएँ अवश्य यहाँ हैं दर्शनीय इसका, प्रियतम!
नृपपुत्रीके समक्ष वर्णन आकर्षक कर बैठा, प्रियतम॥ २२०॥

सुन रही ध्यान देकर वह थी प्रत्येक बात शुककी, प्रियतम!
सुनते-सुनते तोतेके प्रति बढ़ गयी प्रीति उसकी, प्रियतम!
बोली—'रे कीर! बैठ जा तू आकर समीप मेरे, प्रियतम!
दोनों हाथोंसे छू-छूकर मैं प्यार करूँ तुझको', प्रियतम॥ २२१॥

पड़ते न पलक पड़ते तोता बड़भागी उड़ आया, प्रियतम!
कर-पल्लवपर आसीन हुआ, उस नृपति नन्दिनीके, प्रियतम!
प्राणोंके रससे वह उसको अभिसिक्त लगी करने, प्रियतम!
आँखें पल-पल शुककी मुँदतीं, मानो समाधि लगती, प्रियतम॥ २२२॥

अनुजा सहोदरा दौड़ी, तरु था एक पासमें ही, प्रियतम!
टप-टपकर चूते थे मीठे फल पके हुए उससे, प्रियतम!
अञ्जलिमें भरकर ले आयी फल, चार-पाँच पलमें, प्रियतम!
दे दिया बहिनको, बहिन लगी रखने शुकके मुखमें, प्रियतम॥ २२३॥

इतना आदर पाकर बोला वह कीर नम्रतासे, प्रियतम!
'हे देवि! चलो पथ दिखलाऊँ, मैं इस वनका तुमको', प्रियतम!
कोने-कोनेसे परिचित हूँ, इसमें ही रमा हुआ, प्रियतम!
स्वीकार करो अतिशय नगण्य सेवा यह तुम मेरी, प्रियतम॥ २२४॥

पहले महीपनन्दिनि! चलकर इस वायुकोण पथसे, प्रियतम!
देखो उस दिव्य सरोवरको, अनुपम सुमिष्ट जल है, प्रियतम!
प्रत्यक्ष महामायाकी है, कुछ शक्ति भरी जलमें, प्रियतम!
पीते ही आँख बदलकर हैं दर्शन विचित्र होते, प्रियतम॥ २२५॥

फूले सरोजका चित्र, नित्य है एक लिखा उसमें, प्रियतम!
है मध्य देशमें बिन्दु एक, नीले अरविन्दोंका, प्रियतम!
उसको पिङ्गल नीरज निर्मित, घेरे त्रिकोण फिर है, प्रियतम!
है अरुण कुञ्जका अष्टकोण डाले उसपर घेरा, प्रियतम॥ २२६॥

पीतारुण अरविन्दोंके हैं दो फिर दशकोण बने, प्रियतम!
क्रमशः आकृतिमें बड़े सतत नव-नव शोभावाले, प्रियतम!
उनको घेरे है एक बड़ा श्यामल सरोरुहोंका, प्रियतम!
नव नित्य चतुर्दशकोण अहो! सौरभसे भरा हुआ, प्रियतम॥ २२७॥

स्वदलोंकी अनुकृति धरते, अब सित नवल अम्बुरुहके, प्रियतम!
हैं बने अष्ट दल, दिनकरकी किरणें बिखेरते-से, प्रियतम!
उनको भी साथ लिये उरमें, उज्ज्वल कमलोंके वे, प्रियतम!
सोलह दल हैं अदभुत, शशिकी शोभा हरनेवाले, प्रियतम॥ २२८॥

चतुरस्र मनोहर पद्मोंका विरचित है अब ऐसा, प्रियतम!
जो सात रंग पल-पलमें है क्रमशः धारण करता, प्रियतम!
आँखें उससे जुड़ते ही, यह विभ्रम-सा होता है, प्रियतम!
पावस, वसन्त ऋतु, शरद, शिशिर, आतप, हिममें क्या है, प्रियतम॥ २२९॥

उस नील सरोज बिन्दुपर जब पड़ती रवि किरणें हैं, प्रियतम!
ऊपरसे मध्य गगनसे तब घटती यह घटना है, प्रियतम!
भौंरे सब इस वनके तत्क्षण उड़कर आ जाते हैं, प्रियतम!
मिलकर असंख्य वे रचते हैं सुन्दर वितान काला, प्रियतम॥ २३०॥

अचरज है, सब मँडराते हैं, ऊपर वे नभमें ही, प्रियतम!
नीचे क्षणभर भी उतर नहीं आते फूलोंपर हैं, प्रियतम!
यह तीस पलोंका दृश्य अहो! प्रतिदिन ही होता है, प्रियतम!
मध्याह्न बीतते ही फिर हैं, सब-के-सब उड़ जाते, प्रियतम॥ २३१॥

ज्यों तथा उतरने लगता है यह तरणि अस्तगिरिमें, प्रियतम!
'गूँ-गूँ' करता दक्षिण पथसे है एक मधुप आता, प्रियतम!
कुछ पल उन नलिनोंकी फेरी देकर, ढल पड़ता है, प्रियतम!
पीले जलरुहके उरपर, फिर रहता प्रभाततक है, प्रियतम॥ २३२॥

हे राजतनूजे! कह-कहकर कैसे समझाऊँ मैं, प्रियतम!
कितना है चमत्कारकारी, प्रत्यक्ष इसे कर लो, प्रियतम!
देखो द्रुम-अवली कूलोंकी हिलती यह दीख रही, प्रियतम!
दो-ढाई सौ पद चलते ही तटपर पद रख दोगी', प्रियतम॥ २३३॥

तोता इतना कहकर, उड़कर उस ओर लगा चलने, प्रियतम!
सखियोंको लिये तुरन्त चली अवनीशनन्दिनी भी, प्रियतम!
मिल गया पाँच पलमें सरका तट अग्निकोणवाला, प्रियतम!
बातें सर्वथा सत्य निकलीं, जो कही कीरने थीं, प्रियतम॥ २३४॥

कम हो या अधिक किंतु सबको लग गयी प्यास अब थी, प्रियतम!
था भरा स्वच्छ जलसे पूरा कासार सामने ही, प्रियतम!
छू रहा नीर था पहली ही सीढ़ीके आधेको, प्रियतम!
अञ्जलिमें जल भरकर सब वे पीने लग गयीं भला, प्रियतम॥ २३५॥

दो घूँट कण्ठके भीतर, बस, जाते ही उन सबके, प्रियतम!
हो गये प्राण शीतल, सुखमें तनका कण-कण डूबा, प्रियतम!
आँखोंमें भरी और अभिनव रसमयी खुमारी-सी, प्रियतम!
निस्पन्द गात्र होकर सब वे ढल पड़ीं वहीं क्षणमें, प्रियतम॥ २३६॥

अनुभव अब राजनन्दिनीको होने लग गया वहाँ, प्रियतम!
मानो हूँ खड़ी अकेली मैं अनुजाको साथ लिये, प्रियतम!
बातें आगे-पीछेकी थीं विस्मृत हो गयी सभी, प्रियतम!
आनन्द हिलोरोंमें बहकर सरको निहारती थी, प्रियतम॥ २३७॥

बोली-'री बहिन! घूमकर अब पूरे सरको देखें', प्रियतम!
पश्चिमकी ओर चली, तटको पकड़े धीरे-धीरे, प्रियतम!
पद बीस-तीस ही चलनेपर मिल गयी एक रमणी, प्रियतम!
गोरी, सुन्दरी, अनोखी थी, यौवनसे वह माती, प्रियतम॥ २३८॥

यह कहा तथा उस रमणीने उन नृपदुहिताओंसे प्रियतम!
'तुम चलो, पधारो मेरे घर, शशिमुखि! न विलम्ब करो, प्रियतम!
अतिकाल हो चुका है, पहले किञ्चित् भोजन कर लो, प्रियतम!
मैं ही हूँ नित्यसेविका, इस वनकी अधिदेवीकी', प्रियतम॥ २३९॥

फँसकर मीठे आकर्षणमें दासीकी वाणीके, प्रियतम!
पहुँचीं वे उसके घरपर जो पश्चिम सर-तटपर था, प्रियतम!
सुन्दर विशाल था, पद उसमें रखते ही दोनोंको, प्रियतम!
ऐसा प्रतिभात हुआ मानो अपना ही वह घर हो, प्रियतम॥ २४०॥

छोटी चञ्चला पहुँचते ही लग गयी खेल करने, प्रियतम!
गृहके जो प्रतिपालित सुन्दर पक्षी थे उन सबसे, प्रियतम!
वह बड़ी राजनन्दिनी किंतु चुपचाप सोचती थी, प्रियतम!
आयी तो मैं अवश्य ही हूँ पहले भी कभी यहाँ, प्रियतम॥ २४१॥

कोई मानो कानोंमें यह कह उठा—'सदा जय हो!, प्रियतम!
काननकी अहो! स्वामिनीकी, रसमयी मुग्धताकी, प्रियतम!
अपना वासस्थल यह उनका, सच्चिदानन्दमय है, प्रियतम!
वे भूल रही हैं पर इसको, अपनेको, मुझको भी', प्रियतम॥ २४२॥

यह भान उसे होते ही, वह अकचक-सी हुई उठी, प्रियतम!
स्वर था परिचित, पर किसका है, इस समय न जान सकी, प्रियतम!
सम्मुख वह हंस, हंसिनीसे कह रहा झूमकर था, प्रियतम!
'प्रियतमे! कथा मैं कहता हूँ, तुम सुनो एक मनसे, प्रियतम॥ २४३॥

है वन अनादि, इसमें पुष्पित जो वे अशोकतरु हैं, प्रियतम!
उत्तरमें उनसे ही निर्मित जो वह निकुञ्जथल है, प्रियतम!
उसमें ही नित्य, सनातन, अज, वे दम्पति रहते हैं, प्रियतम!
अतिशय ऊँचे हों भाग, तभी कोई ले देख भले, प्रियतम॥ २४४॥

वल्लभे! कहूँ कैसे घटना कबकी वह थी या है, प्रियतम!
जब काल नहीं इस वनमें है शासन करनेवाला, प्रियतम!
है अहो! त्रिकाल सत्य, फिर है सच परे कालसे भी, प्रियतम!
इतना-सा ही संकेत गिरा उसका कर सकती है, प्रियतम॥ २४५॥

वैसे ही तुम, 'निकुञ्ज है वह' ये शब्द भले सुन लो, प्रियतम!
पर देश नामसे कथित नहीं कोई है वस्तु वहाँ, प्रियतम!
'है कहाँ, अहो!' फिर इसका है उत्तर इतना बनता, प्रियतम!
वह अपनी ही महिमामें है परिनिष्ठित नित्य, भला, प्रियतम॥ २४६॥

अच्छा तो, प्राणाधिके! सुनो, दम्पतिके जीवनमें, प्रियतम!
कैसी थी प्रीति परस्परकी, लहरें लेती रहतीं, प्रियतम!
दोनों ही एक दूसरेको रहते निहारते ही, प्रियतम!
फिर भी अतृप्ति रहती मानो दर्शनका सुख न मिला, प्रियतम॥ २४७॥

दोनोंके प्राण एक होकर ऐसी गति धर लेते, प्रियतम!
होने लगती प्रतीति उनको, मानो मैं हूँ न अहो! प्रियतम!
स्वीकार कालका वे करते, कहनेके लिये तभी, प्रियतम!
वह था उनका स्वरूप ही, फिर आरम्भ खेल होता, प्रियतम॥ २४८॥

उनकी पलकें खुलतीं, सुस्मित अधरोंपर भर आता, प्रियतम!
सुस्थिर वे नयन-पुतरियाँ भी चञ्चल कुछ हो जातीं, प्रियतम!
गलबाँही दिये हुए ही वे, धीरे-धीरे उठते, प्रियतम!
चलते धीरे, सुखसे धरणी जड़िमा धारण करती, प्रियतम॥ २४९॥

आगे प्रवाह बढ़ता क्रमशः उन दोनोंके रसका, प्रियतम!
वे अहो! कहाँ-से-कहाँ जुड़े उसमें बहते रहते, प्रियतम!
पीछे आनेका प्रश्न नहीं उस धारामें बनता, प्रियतम!
वे सृजन और संहार जनित परिणाम न उसमें हैं, प्रियतम॥ २५०॥

जो हो, वह घटना है तबकी, दोनों जब उत्सुक थे, प्रियतम!
शृङ्गार धरानेकी इच्छा ले गौर-नील तनमें, प्रियतम!
दोनोंमें होड़ लगी थी यह, हैं कला किसे कहते, प्रियतम!
दिखलायें आज परस्परकी पहली इस रचनामें, प्रियतम॥ २५१॥

प्यारीको देख-देखकर ही प्यारे रचना करते, प्रियतम!
प्यारेको देख-देखकर ही प्यारी रचना करती, प्रियतम!
अपने ही आप अँगुलियोंमें उनकी वे आ जाते, प्रियतम!
उपकरण सभी, आवश्यक जो जितने जब थे होते, प्रियतम॥ २५२॥

प्राणोंकी अभिलाषा ही वह माला बनकर आती, प्रियतम!
प्राणोंका ही उल्लास सुमन सुरभित होकर आता, प्रियतम!
प्राणोंका स्नेह विमल नीला-पीला फुलेल बनता, प्रियतम!
प्राणोंका ही अनुराग तरल शीतल विलेप होता, प्रियतम॥ २५३॥

प्राणोंकी वृत्ति सदा नव सुख देने-ही-देनेकी, प्रियतम!
प्राणोंकी आशा नित्य नये रसमें सन जानेकी, प्रियतम!
प्राणोंकी वह अभिसंधि मिले रहनेकी आपसमें, प्रियतम!
प्राणोंसे झर ये सब बनतीं, तूली छवि लिखनेकी, प्रियतम॥ २५४॥

प्राणोंकी ममता ही काली-कबरी डोरी बनती, प्रियतम!
प्राणोंका मोह परस्पर, वह काजल बन जाता था, प्रियतम!
प्राणोंका अद्वयपन-मद चू, भ्रू-मध्य-बिन्दु बनता, प्रियतम!
प्राणोंका प्रणय-रोष होता, वह लाल महावर था, प्रियतम॥ २५५॥

प्राणोंमें बढ़ी प्रीति टेढ़ी, चलकर कँगही बनती, प्रियतम!
प्राणोंकी रति परिणत होती उज्ज्वलतम दर्पणमें, प्रियतम!
प्राणोंमें बढ़ी हुई पल-पल आसक्ति पान होती, प्रियतम!
प्राणोंकी ही रुचि बन जाती अम्बर नीला-पीला, प्रियतम॥ २५६॥

प्राणोंका संचालन बनता आवरण पयोधरका, प्रियतम!
प्राणोंके स्वर वे सात बन्द चोलीके हो जाते, प्रियतम!
प्राणोंका ही विश्वास अचल, वह पुष्पसार बनता, प्रियतम!
प्राणोंकी सुन्दरता होती लीला-नीरज करका, प्रियतम॥ २५७॥

यों स्वतः हुई प्रस्तुत चिन्मय सामग्री लेकर वे, प्रियतम!
तल्लीन हुए निरुपम रचना करने लग गये वहाँ, प्रियतम!
भावोंसे कर हिल-हिलकर, था कुछ-का-कुछ बन जाता, प्रियतम!
दो-तीन बारमें ही पूरा शृंगार धरा पाते, प्रियतम॥ २५८॥

हो गयी वेश-रचना, तब वे कहने इस भाँति लगे, प्रियतम!
'किसने बाजी जीती बोलो','पहले तुम', 'तुम पहले' प्रियतम!
कोई सम्मत न हुआ, निर्णय जो पहले बतलाये, प्रियतम!
बस, झूल-झूलकर हँसते वे, गलबाँही दिये हुए, प्रियतम॥ २५९॥

आखिर बोली प्यारी—'प्यारे! तुम अहो! विजेता हो', प्रियतम!
बोला प्यारा—'सच हे प्यारी! श्री-करमें ही जय है', प्रियतम!
दोनों ही दुहराते जाते अपनी ही उक्ति, भला, प्रियतम!
मुखरित निकुञ्ज वनका कण-कण होता उस मधुरवसे, प्रियतम॥ २६०॥

'क्या सत्य कभी दो है होता? है नित्य एक वह तो, प्रियतम!
प्यारी विचारकर तुम देखो, है उक्ति सही मेरी', प्रियतम!
'हे प्यारे है स्वीकार मुझे, यह सत्य एक ही है, प्रियतम!
सोचो तुम बार-बार अब भी, मेरा कहना सच है', प्रियतम॥ २६१॥

ऐसी बतकही रसीली शुचि उनमें पल साठ चली, प्रियतम!
यह कहा अन्तमें प्यारीने-'प्यारे! देखो अब तो, प्रियतम!
अपने-ही-आप सजाऊँगी, मैं अपने इस तनको, प्रियतम!
तुम किंतु घड़ी आधी अपने लोचन मूँदे रहना', प्रियतम॥ २६२॥

प्यारेने हँस-हँसकर ऐसा करना स्वीकार किया, प्रियतम!
शर्तें दो रखी किंतु उसने, कुछ बात सोच करके, प्रियतम!
'छूता मैं रहूँ निरन्तर ये दस नख पीले पदके, प्रियतम!
फिर मैं भी अङ्ग सँवारूँ तब मीलित-दृग तुम रहना', प्रियतम॥ २६३॥

प्यारीने मुसका-मुसकाकर हामी भर ली इसकी, प्रियतम!
कौतुक नवीन आरम्भ हुआ अब वह निमेषमें ही, प्रियतम!
मुट्ठीमें पद-नख मणि धारण करके प्यारे बैठे, प्रियतम!
प्यारी विचित्र अपने तनकी रचना करने बैठी, प्रियतम॥ २६४॥

बोली मनमें—'प्यारेको मैं अबतक सुख दे न सकी, प्रियतम!
ये सदा पूछते रहते हैं बातें अनेक मुझसे, प्रियतम!
लज्जामें भरी किंतु मैं तो कुछ बोल नहीं पाती, प्रियतम!
अतएव रूप अपना निरवधि मैं एक और कर लूँ, प्रियतम॥ २६५॥

कर्पूर गौर वह रूप बने करुणासे नित्य भरा, प्रियतम!
अलकें उसकी कमनीय अहो! बन जायँ जटा नीली, प्रियतम!
आवरण-हीन वह नित्य रहे, भूषित फिर नित्य रहे, प्रियतम!
प्यारेके पद-सरोरुहोंकी रजकी परछाँहीसे, प्रियतम॥ २६६॥

देवीके बदले प्यारेको वह महादेव दीखें, प्रियतम!
प्यारेकी प्रियता भी उसमें पल-पल परिवर्धित हो, प्रियतम!
मैं युगपत् अपने इस तनको, उस महादेव तनको, प्रियतम!
देखूँ, मेरी मुग्धता किंतु यह भी अक्षुण्ण रहे, प्रियतम॥ २६७॥

इसके पश्चात अहो! जब भी जो भी ये प्रश्न करें, प्रियतम!
तत्क्षण ही समाधान उसका सुन्दर कर पाऊँ मैं, प्रियतम!
प्यारेको सुख ही दूँ, मेरा जीवन है इसीलिये, प्रियतम!
है सच यह तो प्यारे देखें, वह रूप आँख खुलते', प्रियतम॥ २६८॥

प्यारेके लोचन उन्मीलित हो गये विपलमें ही, प्रियतम!
प्यारीका अद्‍भुत रूप निरख करके वह मुसकाया, प्रियतम!
'जय-जय हे महादेव! जय!'—फिर कहकर नत मस्तक हो, प्रियतम!
वह भी अब चला वेश-रचना करने नूतन अपनी, प्रियतम॥ २६९॥

प्यारीके चिन्तनमें ही थी प्यारेकी वृत्ति लगी, प्रियतम!
ऐसी अखण्ड तन्मयता थी पल तीस बनी उसकी, प्रियतम!
जो प्राय: उसको परिणत थी प्यारीमें कर बैठी, प्रियतम!
अतएव ढक गया साँवरपन पहले गोरेपनसे, प्रियतम॥ २७०॥

हो गये व्यक्त फिर उसमें वे तरुणीके चिह्न सभी, प्रियतम!
वह बना रमणसे अब रमणी सुन्दरी अतुल गोरी, प्रियतम!
सम्मिश्रित भावोंका बोझा इतना गुरु-गुरुतर था, प्रियतम!
जिससे दबकर दृगने धर ली, अचपल गँभीर मुद्रा, प्रियतम॥ २७१॥

प्यारेमें प्यारेपनकी कुछ अब भी थी गन्ध बची, प्रियतम!
इसलिये सोचता था यों वह रमणी-तनमें बैठा, प्रियतम!
'प्यारीके सभी मनोरथ हों पूरे अनुराग भरे, प्रियतम!
इन महादेवकी मैं भी अब हूँ नित्य महादेवी, प्रियतम॥ २७२॥

चारोंमें ही स्वरूपत: है यद्यपि न भेद कोई, प्रियतम!
चारों ये रूप सर्वथा हैं सच्चिदानन्दमय ही, प्रियतम!
लीलाप्रिय अहो! किंतु निरवधि हम चार हुए खेलें, प्रियतम!
युगपत् मुग्धता, नित्य संविद् मुझमें भी व्यक्त रहे, प्रियतम॥ २७३॥

उन महादेवके इतनेमें लोचन खुल गये तथा, प्रियतम!
शोभा निहारकर मुग्ध हुए वे उन नवदेवीकी, प्रियतम!
वे पार्श्ववर्तिनी क्षणमें ही चिर-परिचित हो बैठीं, प्रियतम!
उमड़ा रस-सिन्धु, देव डूबे देवीको लिये हुए, प्रियतम॥ २७४॥

पहली तरंगसे ही प्लावित उत्तरकी कुञ्ज हुई, प्रियतम!
फिर लहर दूसरीमें कानन पश्चिमका डूब गया, प्रियतम!
ऊँची अत्यन्त तीसरीमें दक्षिणका वन डूबा, प्रियतम!
चौथे प्रवाहमें मग्न हुआ प्राची अरण्य पूरा, प्रियतम॥ २७५॥

प्लावन जाकर तब कहीं थमा, जब युग असंख्य बीते, प्रियतम!
देवी वे महादेव उससे बाहर अब निकल सके, प्रियतम!
डूबे रहनेका सुख अनुपम उन चारों लहरोंमें, प्रियतम!
जो था उनको अनुभूत हुआ, उसकी ही बात छिड़ी, प्रियतम॥ २७६॥

देवी बोली, स्वर था उनका मानो रसका सोता, प्रियतम!
'हे नाथ! बात कुछ बतलाओ उत्तर निकुञ्जवाली', प्रियतम!
सुनते ही महादेव गद्गद होकर यों बोल पड़े, प्रियतम!
'हे सती! सुनो द्रुम डालीपर हिमकरके न्याय कहूँ, प्रियतम॥ २७७॥

युगपत् निस्पन्द नित्य एवं उच्छलित नित्य रस है, प्रियतम!
वह देश-कालसे परे जहाँ अपने स्वरूपमें है, प्रियतम!
है किंतु कूलपर जो, उसकी आँखोंके अनुभवमें, प्रियतम!
उसके स्वभाव ये नित्य अहो! आते हैं क्रमशः ही, प्रियतम॥ २७८॥

आस्वादन, आस्वादक एवं आस्वाद्य नामवाला, प्रियतम!
सच तो यह है, दयिते! किञ्चित् कोई है भेद नहीं, प्रियतम!
फिर भी वह है रसराज वहाँ, वह महाभाव भी है, प्रियतम!
इन दोकी ही क्रीडा चलती उत्तर निकुञ्जमें है', प्रियतम॥ २७९॥

'प्राणाधिक! कहो वनस्थलकी पश्चिमके क्या गति है', प्रियतम!
देवीकी आँख लगी बहने झर झर कहकर इतना, प्रियतम!
विह्वल वे देव जटावाले, उस ओर हुए ऐसे, प्रियतम!
मानो प्रवाहिणी भावोंकी ले डूबेगी उनको, प्रियतम॥ २८०॥

जैसे-तैसे अपनेको वे किञ्चित् सँभाल पाये, प्रियतम!
हो जाता कण्ठ रुद्ध फिर भी, ज्यों कुछ कहने चलते, प्रियतम!
आखिर वे बोल सके इतना—'प्रियतमे! वहाँ देखो, प्रियतम!
रसराज नित्य नीला निरुपम शिशु बन है खेल रहा, प्रियतम॥ २८१॥

'स्वामिन्! दक्षिण वनमें क्या है?' देवीने अब पूछा, प्रियतम!
करते-करते ही प्रश्न किंतु ढल पड़ीं देवपर वे, प्रियतम!
उत्तरका उनको पहले ही मानो आभास मिला, प्रियतम!
उस सुखमें ही वह चेतनता, सत्तर पल डूब गयी, प्रियतम॥ २८२॥

अनुराग भरे शीतल करसे दयिताके अङ्गोंको, प्रियतम!
सहला-सहलाकर देव लगे करने प्रबुद्ध उनको, प्रियतम!
आकुल बूँदें टप-टप दृगसे गिर रही अनर्गल थीं, प्रियतम!
अभिषेक हो रहा था उनसे, देवीके श्रीमुखका, प्रियतम॥ २८३॥

वे जगीं, देवने बात कही दक्षिण अरण्यथलकी, प्रियतम!
'वह महाभाव ही नित्य बना अवनीशनन्दिनी है, प्रियतम!
रसराज बना ताना जिसमें, है महाभाव बाना, प्रियतम!
निर्मित वितान उस पटसे है नभमें उन दो वनका' प्रियतम॥ २८४॥

देवीके मृदुल कलेवरमें चल पड़ी गुदगुदी-सी, प्रियतम!
मानो ऊपरतक रस भरकर हिल गया बाँध उरका, प्रियतम!
ऊँचे स्वरसे रह-रहकर वे हँसने अब लगीं तथा, प्रियतम!
'पूरब! पूरब!' केवल इतना मुखसे था निकल रहा, प्रियतम॥ २८५॥

'अच्छा तो, पूरब वनकी भी अब बात रहस्यमयी, प्रियतम!
जीवनसंगिनि! सुन लो', बोले वे महादेवता भी, प्रियतम!
'अभिनव सुन्दर शुचि रंगस्थल वह मधुरभावका है, प्रियतम!
है जहाँ प्रीतिका आश्रय भी, फिर विषय परस्पर वे, प्रियतम॥ २८६॥

है प्रीति ढली वह किंतु वहाँ अद्भुत उस साँचेमें, प्रियतम!
आवरण दोषका लिये अहो! जो नित्य निराविल है, प्रियतम!
पावनतम है, पल-पलमें है नव-नव होनेवाला, प्रियतम!
हो सकी, न है तुलना जिसकी, होगी भी नहीं कभी', प्रियतम॥ २८७॥

इतना कहते-सुनते ही वे दोनों ध्यानस्थ हुए, प्रियतम!
पुष्पित अशोककी डाली, वह ऊपरसे एक झुकी, प्रियतम!
उन दोनोंपर ही, झूल लगी सुरभित बयार करने, प्रियतम!
हम दो भी तत्क्षण उनकी ही झर पड़े साँससे हैं', प्रियतम॥ २८८॥

यह उपर्युक्त इतिहास हंस कह गया हंसिनीसे, प्रियतम!
तन्मय होकर सुन गयी इसे वह राजनन्दिनी भी, प्रियतम!
अब लिये मराल, मरालीको धीरे-धीरे आया, प्रियतम!
छूने स्वचञ्चुसे लगा धरा, नृप दुहिताके आगे, प्रियतम॥ २८९॥

कर रही याद-सी अपनी ही भूली कुछ बातोंको, प्रियतम!
थी खड़ी नृपति दुहिता नीरव, गुत्थी सुलझाती-सी, प्रियतम!
'है जुड़ा अवश्य अहो! मुझसे इतिवृत्त हंसवाला' प्रियतम!
कुछ पलके लिये चित्त उसका भावित इस भाँति हुआ, प्रियतम॥ २९०॥

मनमें आया, मरालसे ही मैं क्यों न पूछ यह लूँ, प्रियतम!
संकोच हो गया किंतु, पुरुष आखिर विहङ्ग यह है, प्रियतम!
अतएव तनिक चतुराईका पथ अपनाया उसने, प्रियतम!
बोली—'हे हंस! जहाँ वे हैं, मैं जा सकती हूँ क्या?', प्रियतम॥ २९१॥

‘निर्बाध, अवश्य-अवश्य अहो! नृपनन्दिनि! जब चाहो, प्रियतम!
श्रीपदका ही तो नित्य भला, कर रहे ध्यान वे हैं, प्रियतम!
जा-जाकर ही रस-वारिधिमें सब पथिक नहाते हैं, प्रियतम!
आ जाय उमड़कर पास वही, यह भाग सुदुर्लभ है’ प्रियतम॥ २९२॥

ऐसे कह उठा हंस, देकर फेरी नृपपुत्रीकी, प्रियतम!
गुत्थी खुलती-सी दीखी, पर उसका मन उलझ गया, प्रियतम!
उस नेह जालमें, विधिगतिसे, जो अकस्मात फैला, प्रियतम!
लेकर मरालकी ओट सरस, चालित अलक्ष्य करसे, प्रियतम॥ २९३॥

लज्जाका भान हुआ, फिर भी बोली वह धीरे-से, प्रियतम!
‘जाऊँ मराल मैं किस पथसे, इतना-सा और कहो, प्रियतम!
विस्मृत-सी हुई मुझे बातें लगती निकुञ्जकी हैं, प्रियतम!
तुम सहृदय हो, इससे साहस हो गया पूछनेका’ प्रियतम॥ २९४॥

‘दो पथ महीपनन्दिनि! हैं, तुम चाहो जिससे, जाओ, प्रियतम!
पहलेमें दोनों ओर लगे उज्ज्वल फूले तरु हैं, प्रियतम!
पथरीला है वह ठंढापन-सूनापन लिये हुए प्रियतम!
अव्यक्त और हो जाते हैं पदचिह्न सभी उसमें, प्रियतम॥ २९५॥

है लता दूसरेमें पीली लिपटी नीले द्रुमसे, प्रियतम!
वह नवल बारहों मास बनी, नौ भाँति फूलती है, प्रियतम!
आगे वह लाल कुसुम पथको करता परागमय है, प्रियतम!
अङ्कित सुस्पष्ट चिह्न उसपर होते पद-पदपर हैं, प्रियतम॥ २९६॥

पहला पथ है उनका, जिनका धीरज न छूटता है, प्रियतम!
बाहर न आँख जाती जिनकी, मति सहस्रारमें है, प्रियतम!
करते न विराम कभी जो हैं, रखते न पास कुछ हैं, प्रियतम!
है अहम् निकल जाता जिनका चलनेसे पहले ही, प्रियतम॥ २९७॥

फूली लतिका पथ है, उनका आकुल जो पल-पल हैं, प्रियतम!
आँखें फँसती हैं जिनकी, रति उरके भावोंमें है, प्रियतम!
हैं श्रमित चरण जिनके, जो हैं अञ्चलमें फूल लिये, प्रियतम!
छाया रसमयी अहंताकी जिनको न छोड़ती है, प्रियतम॥ २९८॥

यह नृपति तनूजे! विनती इस किंकर मरालकी है, प्रियतम!
तुम तो दोनों पथको हँसकर, केवल छू भर लेना, प्रियतम!
अग्रिम इस उपवनसे भी, वे चलते हैं सटे-सटे, प्रियतम!
इतनेमें ही वह हंसिनी उड़ी, उड़ गया हंस पीछे प्रियतम॥ २९९॥

नृपपुत्री बारह-चौदह पल खोयी-सी खड़ी रही, प्रियतम!
उस ओर देखती, उड़कर थे वे जिधर विहङ्ग गये, प्रियतम!
सहसा उसकी फिर चित्तवृत्ति अनुजाकी ओर गयी, प्रियतम!
देखा वह तो सोयी सुखसे गहरी निद्रामें है, प्रियतम॥ ३००॥

'क्या करूँ? जगाऊँ इसको अब या मैं किञ्चित् ठहरूँ' प्रियतम!
यों रही सोचती, किंतु ठीक निर्णय कुछ कर न सकी, प्रियतम!
थी भरी अनोखी निर्भयता सर्वत्र वहाँ फैली, प्रियतम!
आयी न अतः उसके मनमें कोई अनिष्ट शङ्का, प्रियतम॥ ३०१॥

घूमूँ मैं इस उपवनमें यह तबतक जग सकती है, प्रियतम!
जगकर यह मुझे ढूँढ़ लेगी, मैं दूर न जाऊँगी, प्रियतम!
ऐसा विचारकर चली तथा उपवनमें जा पैठी, प्रियतम!
लगभग सौ पदपर ही दीखी ऊँची-सी एक शिला प्रियतम॥ ३०२॥

उसपर चढ़कर उसने डाली सब ओर दृष्टि अपनी, प्रियतम!
जीवनका पहला अवसर था, सर्वथा अकेली थी, प्रियतम!
यह हुई प्रतीति उसे मानो कोई पुकारता हो, प्रियतम!
'आओ, प्रियतमे! इधर आओ, पथ देख रहा हूँ मैं' प्रियतम॥ ३०३॥

तृतीय शतक समाप्त

॥ विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ॥

चतुर्थ शतक

उद्यान एक उस वनमें था सुषमाकी खानि बना, प्रियतम!
आकर्षण कण-कणमें उसके ऐसा था भरा हुआ, प्रियतम!
कोई प्राणी सपनेमें भी क्षणभर यदि देख सके, प्रियतम!
खोकर सब कुछ भी वह अपना चाहेगा जाना ही, प्रियतम ॥ ३०४ ॥

प्राचीकी ओर लता मण्डित शोभित तमाल तरु थे, प्रियतम!
दक्षिण-पश्चिम-उत्तरमें थी श्रेणी कदम्बकी, हे प्रियतम!
थी भूमि वाटिकाकी अनुपम सर्वत्र लालमणिकी, प्रियतम!
विरचित वेदी थी एक वहाँ कुसुमोंकी क्यारीमें, प्रियतम ॥ ३०५ ॥

उस पद्मरागकी वेदीपर फूलोंके बीच खड़ी, प्रियतम!
नीलम निर्मित थी मूर्ति एक, मानो बस, बोल चली, प्रियतम!
अभिनव बालककी जो अपने करमें था वेणु लिये, प्रियतम!
स्वर भरनेकी तैयारीमें, कुछ बात सोचता-सा, प्रियतम ॥ ३०६ ॥

इस नीली प्रतिमासे पूरब, बस, ठीक सामने ही, प्रियतम!
थी प्रस्तर शिला, खड़ी जिसपर वह राजकुमारी थी, प्रियतम!
दोनोंमें थी दूरी केवल पद तीन-चार सौकी, प्रियतम!
वे विटप तमाल वाटिकाके छू रहे शिलाको थे, प्रियतम ॥ ३०७ ॥

सुस्पष्ट शिलापरसे ही थी सहसा वह दीख गयी, प्रियतम!
प्रतिमा अवनीशनन्दिनीको सुन पड़ा और वह था, प्रियतम!
मीठा स्वर उसे बुलानेका, उस दिशा प्रतीचीसे, प्रियतम!
दोनों ही एक कालमें ही बातें ये हुईं वहाँ, प्रियतम ॥ ३०८ ॥

सुन्दर नव वह अनुभूति सुखद नरपालनन्दिनीकी, प्रियतम!
कैसे बतलाऊँ, वाणीके वशकी है बात नहीं, प्रियतम!
ऐसे सब अवसरपर रहता है रिक्त कोश उसका, प्रियतम!
मिलनेकी युक्ति मिली न उसे श्रवणोंसे, लोचनसे, प्रियतम॥ ३०९॥

जो हो, तत्काल उतर आयी नृपपुत्री किंतु उसे, प्रियतम!
कोई न मिली पगडंडी, जो सीधे उस ओर चले, प्रियतम!
वे सघन लताएँ उपवनकी जुड़कर थीं जाल बनी, प्रियतम!
उत्तरका तो पथ मिलता था, पर नहीं प्रतीचीका, प्रियतम॥ ३१०॥

धीरज न बचा उसमें अब था, जो सोच-विचार करे, प्रियतम!
अपना सिर डाल दिया उसने वल्लीके छिद्रोंमें, प्रियतम!
जैसे-तैसे निर्माण लगी करने पथ उनमें ही, प्रियतम!
वे टूट न जायँ, किंतु इतना था ध्यान बना उसमें, प्रियतम॥ ३११॥

जैसी भावना निकलती है, वैसी ही आती है, प्रियतम!
वल्लरियोंके मनमें आया, तोड़ें न हृदय इसका, प्रियतम!
अपने ही आप लगीं होने अपसारित वे पलमें, प्रियतम!
छोटा-सा द्वार बना, नृपकी पुत्री उस पार हुई, प्रियतम॥ ३१२॥

भावोंसे थी विभोर, दिग्भ्रम हो गया अतः उसको, प्रियतम!
सीधे पश्चिम चलना था, पर उत्तरकी ओर मुड़ी, प्रियतम!
गूँजी कानोंमें इतनेमें वैसी ही मधुर गिरा, प्रियतम!
'बायें प्राणोंकी रानी हे! तुम तो मुड़ चलो अभी', प्रियतम॥ ३१३॥

उसके दृग सुलझे, भान हुआ, प्रतिमा बायें ही है, प्रियतम!
झंकृत उर-तार हुए छूकर उस लहर वैखरीको, प्रियतम!
क्या मूर्ति वही है बोल रही, भ्रम होने लगा उसे, प्रियतम!
कैसे सुन पायी स्वर धीमा इतना इस दूरीसे, प्रियतम॥ ३१४॥

दौड़ी वह भान भुलाकर अब, नीचे क्या है इसका, प्रियतम!
कैसे न अहो! टकरायी वह, तरुसे अचरज यह था, प्रियतम!
दो-तीन पलोंमें पद्मराग वेदीपर जा पहुँची, प्रियतम!
थे खड़े सभी द्रुम हरे-हरे, वे पत्र छत्र ताने, प्रियतम॥ ३१५॥

छू गये मृदुल पद जाते ही, उसके अजानमें ही, प्रियतम!
फूलोंके सुरभित गजरेसे, जो पड़ा सामने था, प्रियतम!
यों जान बूझकर ही जैसे रख दिया किसीने हो, प्रियतम!
सुन्दर सरोजके पत्तेपर, बस, अभी सजा करके, प्रियतम॥ ३१६॥

इतनेमें समीपसे प्रतिमाकी शोभा निहारते ही, प्रियतम!
भावोंकी एक उठी आँधी, उड़ गया चित्त उसका, प्रियतम!
उसके प्रवाहमें पीछे अब संभव न लौटना था, प्रियतम!
जीवनका मानचित्र बदला दस-बारह पलमें ही, प्रियतम॥ ३१७॥

भोलापन-पूरित शिशुताके अन्तर्हित भाव हुए, प्रियतम!
आये प्राणोंके विनिमयके उद्दीपनवाले वे, प्रियतम!
बदली चितवनकी रीति, रंग बदला वारिज मुखका, प्रियतम!
अङ्गोंकी संचालन-शैली, पूरी वह बदल गयी, प्रियतम॥ ३१८॥

नृपपुत्रीके निहारनेपर आधे मीलित-दृगसे प्रियतम!
प्रतिमा सजीव-सी ऐसी थी रह-रहकर बन जाती, प्रियतम!
मानो हो अतुल नीलसुन्दर कोई किशोर वयका, प्रियतम!
प्राणोंको रोके सत्य अहो! ठग रहा उसीको हो, प्रियतम॥ ३१९॥

क्यों हो विलम्ब, फिर काल कहीं कुछ हेर-फेर कर दे, प्रियतम!
स्वर्णिम वेला चल देती है पल-आधे-पलमें ही, प्रियतम!
ले माल चली नृपसुता वहाँ निरवधि निमग्न होने, प्रियतम!
प्राणोंकी दो सरिता मिलकर होती है एक जहाँ, प्रियतम॥ ३२०॥

चञ्चल हरिणी-सी आँख बड़ी क्षण एक हुई उसकी, प्रियतम!
देखा जब उसने, दर्शक था कोई भी नहीं वहाँ, प्रियतम!
वह सुमनहार मानो प्रतीक जीवन-यौवन, सबका, प्रियतम!
ग्रीवामें प्रतिमाके पहना, चरणोंमें लुढ़क पड़ी, प्रियतम॥ ३२१॥

बह चली अनर्गल अब धारा, नयनोंसे छू नखको, प्रियतम!
उस इन्द्रनील-विरचित शिशुके, आकुल थी नृपदुहिता, प्रियतम!
'कैसे मेरे ये प्राण अभी इनमें प्रविष्ट होवें, प्रियतम!
फिर काल अन्त-विरहिततक मैं केवल देखूँ मुखको' प्रियतम॥ ३२२॥

भूली वह कौन, कहाँ मैं हूँ, कितने क्षण, कौन कहे, प्रियतम!
युग-युग बीते अथवा परार्द्ध, नखमणिमें लीन हुए, प्रियतम!
सहसा, आँखें जब खुलीं, लगा, 'मूर्छित थी हुई अभी प्रियतम!
सर्वस्व समर्पण कर अपना, होकर दासी इनकी, प्रियतम॥ ३२३॥

है सत्य किसीकी आकृति ही यह, पर वह है मेरा, प्रियतम!
हूँ एकमात्र उसकी मैं अब, अधिकार परस्पर है, प्रियतम!
वह मिले मुझे या मिले नहीं, इसकी क्या है चिन्ता, प्रियतम!
प्राणोंका सौदा होता है क्षणमें कुछ ऐसे ही, प्रियतम॥ ३२४॥

अपने जीवनकी साध अभी पूरी कर लेती हूँ, प्रियतम!
क्षणभर इस कण्ठ मनोहरसे बस, एक बार भेंटूँ, प्रियतम!
एकान्त मुझे अवसर ऐसा फिर मिले न, कभी मिले, प्रियतम!
आ पाऊँगी भी इस वनमें, है बात भाग्यलिपिकी, प्रियतम॥ ३२५॥

दृग लगे पुनः छल-छल करने, वह उठी भुजा फैली, प्रियतम!
आगे तुम देख भले ही लो, झूलना सरस उसका, प्रियतम!
कहकर पवित्रता, मैं अधमा, उसकी क्यों नष्ट करूँ, प्रियतम!
केवल वह है सम्बल मेरा, मैं क्यों खोऊँ उसको, प्रियतम॥ ३२६॥

इतना-सा ही कह सकती हूँ, वह मिलन अर्ध पलका, प्रियतम!
आधार-शिला बनकर उसपर बनने प्रासाद लगा, प्रियतम!
जिसमें विभाग थे स्नेह, मान, वे प्रणय, राग, आगे, प्रियतम!
अनुराग, भाव, फिर महाभाव, सातों अप्रतिम बने, प्रियतम॥ ३२७॥

अधिदेवी उन सातोंकी थी वह राजतनूजा ही, प्रियतम!
जो स्नेहकक्ष था, किंतु अभी उसमें थी वह उतरी, प्रियतम!
इतनेमें ही खोजती उसे, अनुजा झट आ पहुँची, प्रियतम!
उसके पद चिह्नोंपर चलकर, जो उगे धरापर थे, प्रियतम॥ ३२८॥

दो हाथ हटी प्रतिमासे थी, बैठी नृपकी पुत्री, प्रियतम!
पीछेसे उसके कंधोंपर कर रखकर वह बोली, प्रियतम!
'री बहिन! कहाँ मन तेरा है, क्यों छोड़ मुझे आयी, प्रियतम!
अच्छा, अब तो बतला दे, क्या-क्या है करना, कैसे', प्रियतम॥ ३२९॥

जागी समाधिसे वह, लज्जा किञ्चित्-सी हुई उसे,प्रियतम!
क्रमशः उसको सब बतलाया, जिस भाँति यहाँ पहुँची, प्रियतम!
सुनकर वह बड़ी बहिनसे यह पूरा ब्योरा, बोली, प्रियतम!
'मैं पहलेसे ही प्रतिमाकी कुछ बात जानती हूँ', प्रियतम॥ ३३०॥

नृपपुत्री चौंक उठी, मानो मिल गयी उसे ताली, प्रियतम!
पेटीकी अहो! महानिधि वह, थी बन्द पड़ी जिसमें, प्रियतम!
'तू सब बतला दे, पता तुझे जो कुछ है, अभी मुझे' प्रियतम!
भुजमाल कनिष्ठाको पहना, इतना ही कह पायी, प्रियतम॥ ३३१॥

'अच्छा सुन ले!' आँखें, वाणी अनुजाकी घूम उठीं, प्रियतम!
''मौसीने बात कही मुझसे, रूठी बैठी तू थी, प्रियतम!
आश्विनकी, एक वर्ष पहले थी साँझ अमावसकी, प्रियतम!
साँझीके फूल बीन लौटीं, हम सभी देरसे थीं, प्रियतम॥ ३३२॥

मौसी बोली—'लाडिली बड़ी बावली, सत्य यह है, प्रियतम!
छोटी होकर भी, तू तो पर, सब बात समझती है, प्रियतम!
मैं बतलाऊँ, क्यों तुम सबपर, तुम सबकी ही मैया, प्रियतम!
है आज तनिक-सी खीझ गयी, ज्यों ही तुम सब आयीं, प्रियतम॥ ३३३॥

घटना है ग्यारह मास, दिवस दो अबसे पहलेकी, प्रियतम!
तेरा श्रीभैया था वनमें गायोंको लिये गया, प्रियतम!
शिशुओंमें दैवयोगसे यह चर्चा छिड़ गयी वहाँ, प्रियतम!
इन सभी अरण्योंका राजा है कौन, कहे कोई, प्रियतम॥ ३३४॥

जो वे गोपोंके अधिपति हैं, उनका बेटा बोला, प्रियतम!
'मैं ही हूँ नित्य ईश सबका, थे, हैं, होंगे वन जो' प्रियतम!
हँस पड़ा हँसोड़ा शिशु सुनकर भूसुरकुलका जो था, प्रियतम!
बारह ही वर्ष वयसका जो रहता था सदा बना, प्रियतम॥ ३३५॥

'क्यों हँसा, बोल सच तू', उसके पीछे पड़ गये सभी, प्रियतम!
वह भी पक्का था, चंगुलमें फँसता न किसीके था, प्रियतम!
थी किंतु एक दुर्बलता, जो उसको थी च्युत करती, प्रियतम!
कोई मीठी कुछ वस्तु खिला, ले लेता मोल उसे, प्रियतम॥ ३३६॥

शिशुओंने यही उपाय किया, मोदककी भेंट धरी, प्रियतम!
खाकर वह बोला—'राजा हैं श्रीभैयाके बाबा, प्रियतम!
वे सभी वनोंके, व्रजके हैं पालक पालकके भी, प्रियतम!
ये गोपराज भी पहले थे देते कर उस कुलको, प्रियतम॥ ३३७॥

जो वृद्ध पितामह हैं, उनने कर लेना बन्द किया, प्रियतम!
हो गयी मित्रता अद्भुत-सी दोनों ही नृपकुलमें, प्रियतम!
बँध गये स्नेहके बन्धनमें दो राजवंश ऐसे, प्रियतम!
मानो हों अहो! एक माँसे जाये जो गद्दी लें, प्रियतम॥ ३३८॥

अतएव छूट इसको है यह, चाहे जिस काननमें, प्रियतम!
जाकर गोचारण करे, कहीं है रोक नहीं इसको, प्रियतम!
श्रीभैयाके बाबा चाहें तो आज बन्द कर दें, प्रियतम!
छोटा-सा जो वन है इसका, उसमें ही फिर घूमो, प्रियतम॥ ३३९॥

यह वन विशेषतः जिसमें हैं बैठे हम सभी अभी, प्रियतम!
केवल जगदम्बाका है, वे रहती इसमें ही हैं, प्रियतम!
है पता नहीं कुछ, तब भी यह बोला-'मालिक मैं हूँ', प्रियतम!
इसके इस भोलेपनपर ही आ गयी हँसी मुझको, प्रियतम॥ ३४०॥

गोपेश-तनय मुसकाया, दृग-कनखीसे देख उसे, प्रियतम!
प्राणोंका प्यार उधर उमड़ा तेरे श्रीभैयाका, प्रियतम!
जीवनके नित्य-सखाकी क्यों खण्डित वह उक्ति हुई, प्रियतम!
तत्क्षण उसने पूछा हँसकर उस बन्धु हँसोड़ेसे, प्रियतम॥ ३४१॥

'तू तो पण्डित है ही, बतला, कोई उपाय है क्या, प्रियतम!
कल रवि उगनेसे पहले यह हो जाय बात सच्ची, प्रियतम!
अधिकार आज जिस-जिस वनपर मेरे बाबाका है, प्रियतम!
स्वामी उन सबका निरवधि यह हो प्राणसखा मेरा' प्रियतम॥ ३४२॥

उत्तर तुरन्त सुन्दर इसका दे दिया हँसोड़ेने, प्रियतम!
'तू ही तो है युवराज, कहीं तू त्याग सत्य कर दे, प्रियतम!
उस ओर अहो! तेरी बहिनें जो दो सहोदरा हैं, प्रियतम!
उनकी इस गोपराज सुतसे हो चुकी सगाई है, प्रियतम॥ ३४३॥

जब भी विवाह हो इससे क्या, बस, आज रातमें ही, प्रियतम!
भावी दहेजका दान-पत्र तेरे बाबा लिख दें, प्रियतम!
फिर तो वैसा ही होगा, तू जैसा है चाह रहा, प्रियतम!
पूरे अरण्यका कल होगा यह एक छत्र राजा' प्रियतम॥ ३४४॥

चर्चा यह आयी-गयी-सदृश औरोंके लिये हुई, प्रियतम!
तेरे श्रीभैयाके मनसे वह किंतु नहीं निकली, प्रियतम!
संध्याके समय लौटकर जब वनसे घरपर आया, प्रियतम!
चुपचाप महादेवीके वह मन्दिरमें जा बैठा, प्रियतम॥ ३४५॥

जाकर तुरन्त हम सब चिन्तित उसको पूछने लगे, प्रियतम!
कारण न किंतु बतलाता कुछ, मुख था उदास उसका, प्रियतम!
तेरी मैया, मौसी मैं, फिर तेरे बाबा, मौसा, प्रियतम!
ये चार जने थे वहाँ, लगा रोने वह आकुल हो, प्रियतम॥ ३४६॥

मैंने समझाया, मैयाने, बाबाने, मौसाने, प्रियतम!
घिग्घी उसकी बँध गयी और इतना-सा बोल सका, प्रियतम!
'बाबा! प्रण तुम पहले कर लो, जो भी मैं अभी कहूँ, प्रियतम!
उसको ज्यों-का-त्यों सत्य-सत्य पूरा करना ही है' प्रियतम॥ ३४७॥

तेरे बाबाने भी पलभर सोचा तक नहीं तनिक, प्रियतम!
अर्चनका जल था पास उसे करमें लेकर बोले, प्रियतम!
'रे लाल! देन जगजननीकी तू तो मेरे घर है, प्रियतम!
तू जो भी कह देगा उसको वैसे ही कर दूँगा' प्रियतम॥ ३४८॥

बोला श्रीभैया, आँखोंमें फिरसे जल भर करके, प्रियतम!
'बाबा! है प्रिय साँवरा अहो! प्राणोंसे अधिक मुझे, प्रियतम!
बातें इस भाँति हुईं वनमें, भारी है व्यथा मुझे, प्रियतम!
उस सखा विदूषकके अन्तिम निर्णयको सत्य करो, प्रियतम॥ ३४९॥

जीवनमें चाह नहीं है यह, राजा मैं कभी बनूँ, प्रियतम!
मेरी प्राणोपम दो बहिनें, असमोर्ध्व भागवाली, प्रियतम!
हो चुकी साँवरेकी हैं, अब मैं भी निहाल होऊँ, प्रियतम!
राजा हो वही, रखूँ मैं तो निरवधि सँभाल उसकी' प्रियतम॥ ३५०॥

चारों ही स्नेह-विभावित थे, हम लगे विकल रोने, प्रियतम!
तेरे श्रीभैयाके उरकी लखकर विशालताको, प्रियतम!
चलती अविराम रही पावन धारा आठों दृगसे, प्रियतम!
उसमें भीगे रहकर ही यों तेरे बाबा बोले, प्रियतम॥ ३५१॥

'सुन्दर ऐसा क्षण पहला है, जिसमें मैं आज कहूँ, प्रियतम!
है धन्य पितापन मेरा अब, जो पुत्र मिला तुझ-सा, प्रियतम!
मेरी भी यही लालसा थी, रे लाल! धन्य तू है, प्रियतम!
दे दिया अहो! तुमने सब कुछ माँगे ही बिना मुझे' प्रियतम॥ ३५२॥

तत्काल बुलाने दूत गया गुरुदेव महोदयको, प्रियतम!
वे भी आये, रजनी सौ पल चढ़नेसे पहले ही, प्रियतम!
उनको प्रत्यक्ष मिला था यह आदेश दिवाकरका, प्रियतम!
सायं-संध्याके समय उठे ज्यों चले नहाने वे, प्रियतम॥ ३५३॥

'जाओ तुम नील सरोवरपर, उनको प्रणाम करना, प्रियतम!
पूरब-उत्तरके कोनेपर अञ्जलिमें फूल लिये, प्रियतम!
जलमें प्रविष्ट होकर धीरे-धीरे क्रमशः बढ़ना, प्रियतम!
अपने-ही-आप सुमन करसे च्युत होते ही रुकना, प्रियतम॥ ३५४॥

उस जलके तलमें ही निमग्न तत्क्षण तुम हो जाना, प्रियतम!
उपलब्ध वहाँ तुमको निरुपम दो स्वतः वस्तु होंगी, प्रियतम!
उनको लेकर नृपपत्तनमें सीधे तुम चल देना, प्रियतम!
वह दूत मिलेगा पथमें ही, प्रेषित उस राजाका', प्रियतम॥ ३५५॥

ऐसा ही हुआ और गुरुवर थे महासिद्ध पहुँचे, प्रियतम!
वे लिये हुए थे साथ वही, जो वस्तु मिली उनको, प्रियतम!
नीली प्रतिमा थी एक और था एक पुरट-पत्ता, प्रियतम!
पुरइनकी आकृतिका जिसपर अक्षर थे लिखे हुए, प्रियतम॥ ३५६॥

वह दान-पत्र ही था सचमुच भावी दहेजवाला, प्रियतम!
तेरे बाबाकी सही भला उसपर पहलेसे थी, प्रियतम!
अङ्कित थी उस पर तिथि, जो थी उस दिन धनतेरसकी, प्रियतम!
साखी थे गुरुवर और तरणि, उनके थे चिह्न बने, प्रियतम॥ ३५७॥

की सभी व्यवस्था अग्रिम अब गुरुदेव महोदयने, प्रियतम!
उस ओर गोपराजाको था होने यह भान लगा, प्रियतम!
श्रीनारायणका नीराजन संध्यामें करते ही, प्रियतम!
मानो श्रीविग्रह मणिमय वह मुसकाकर कहता हो, प्रियतम॥ ३५८॥

'हे वत्स! बुलाता है तुमको वह नृपति धर्मभाई, प्रियतम!
कुलगुरुको साथ लिये तुम तो प्रस्थान तुरन्त करो' प्रियतम!
प्रेषित-गोपेश यहाँ आये, दो घड़ी रात जाते, प्रियतम!
उन शकट-बलीवर्दोंमें था मानो बल उड़नेका, प्रियतम॥ ३५९॥

मिल कर, बातें कर, भाव विकल वे धर्मबन्धु रोये, प्रियतम!
दोनों कुलगुरुवरका निर्णय अपने-ही-आप हुआ, प्रियतम!
बस, अभी प्रतिष्ठित हो प्रतिमा सुन्दरीवाटिकामें, प्रियतम!
हो दानपत्र यह नित्य जड़ा, प्रतिमा-पदके नीचे, प्रियतम॥ ३६०॥

तुम दोनों बहिनोंकी सँभाल करती मैं यहाँ रही, प्रियतम!
तेरी मैया, तेरे बाबा, ब्रजराज, महामुनि दो, प्रियतम!
पाँचों तेरे श्रीभैयाको आगे कर वहाँ गये, प्रियतम!
हो अर्धनिशा उससे पहले पूरा सब कृत्य हुआ, प्रियतम॥ ३६१॥

चौदसके प्रातः तुम दोनों बाहर खेलने गयीं, प्रियतम!
करके साँवरा कलेवा जब काननमें चला गया, प्रियतम!
लेकर संगिनी एक आयीं वे गोपराज-रानी, प्रियतम!
दो तथा इधरसे हम पहुँचीं उद्यान सुन्दरीमें, प्रियतम॥ ३६२॥

चारों, न निहार-निहार थकीं प्रतिमाकी सुन्दरता, प्रियतम!
गोपेश-गेहिनीके सुतकी आकृति वह विधिकृत थी, प्रियतम!
दिनमें तो तरणि-किरणको वह नीलाभ बना देती, प्रियतम!
साढ़े चौबीस रातमें शशि उससे निःसृत होते, प्रियतम॥ ३६३॥

उस दिनसे ही उद्यान अहो! प्रायः अदृश्य रहता, प्रियतम!
वन फेरी देते, देती थीं जो उन दो तिथियोंमें, प्रियतम!
उनमें जिसको भी देवीका दर्शन हो जाता था, प्रियतम!
उसको ही ज्योतिर्मय वह, पल-दो-पल दीखता भला, प्रियतम॥ ३६४॥

गुरुवरने चलते समय कहा तेरी मैयासे था, प्रियतम!
मैं पास खड़ी थी, मुद्रा थी गम्भीर बड़ी उनकी, प्रियतम!
'अपनी इन दो दुहिताओंकी, रानी! सँभाल रखना, प्रियतम!
निश्चित उस एक अवधितक ये उस वनमें जायँ नहीं' प्रियतम॥ ३६५॥

तेरी बुढ़िया नानी, जो है जननी हम बहिनोंकी, प्रियतम!
उसने ही आज दुपहरीमें आकर है यहाँ कहा, प्रियतम!
'ये चपल छोरियाँ घुसती हैं उस वनकी सीमामें' प्रियतम!
तेरी मैया अत्यधिक इसे सुनते ही घबरायीं, प्रियतम॥ ३६६॥

उसने मुझको भेजा, दौड़ी मैं उस वनमें पहुँची, प्रियतम!
कोई न मिली तुम, किंतु वहाँ थक गयी खोजकर मैं, प्रियतम!
आखिर लौटी, रवि-मन्दिरमें तुम सब थी खेल रही, प्रियतम!
मैंने न कहा कुछ तुम सबको, चुपचाप चली आयी, प्रियतम॥ ३६७॥

तुम भी तुरन्त पहुँची, तेरी मैया भी खीझ उठी, प्रियतम!
है हेतु यही, है पता नहीं यह, किंतु लाडलीको, प्रियतम!
गुरुवरकी रुचिका ही पालन मंगलकारी होगा, प्रियतम!
जाकर उसको सब बतला दे, तू बड़ी सयानी है, प्रियतम॥ ३६८॥

मौसी इन बातोंको मुझसे जिस समय कह रही थी, प्रियतम!
केवल दस-बीस हाथ हटकर तू भी तो थी बैठी, प्रियतम!
उसका स्वर था पर धीमा, मुँह तू तथा फुलाये थी, प्रियतम!
घटना रहस्यपूरित यह तू इसलिये न सुन पायी, प्रियतम॥ ३६९॥

मैं चली तुझे कहने यह सब, इतनेमें ही बाबा, प्रियतम!
आ गये वहाँ, उनसे लालित होकर तू मान गयी, प्रियतम!
ब्यारूके लिये तुरन्त तथा फिर हम सब जा बैठीं, प्रियतम!
बातोंमें फँस गयी और कहना यह भूल गयी, प्रियतम॥ ३७०॥

अतएव यही प्रतिमा है, जो तब हुई प्रतिष्ठित थी, प्रियतम!
तू देख यहाँ दिनकरकी हैं किरणें नीली-नीली, प्रियतम!
है स्वर्णपत्र भी जटित अहो! चरणोंके वह नीचे, प्रियतम!
संयोग देखनेका इसको अपने-ही-आप लगा, प्रियतम॥ ३७१॥

अब तू कह, किधर चलें?'-कहकर अनुजा पल तीन रुकी, प्रियतम!
चिन्तित-सी बड़ी बहिन उसको उत्तर कुछ दे न सकी, प्रियतम!
सहसा उसके मुखसे निकला—'वे कहाँ गयीं सखियाँ' प्रियतम!
आये ये शब्द कि टूट गयी पूरी समाधि उसकी, प्रियतम॥ ३७२॥

दीखा जगते ही सम्मुख है, सर वही मिष्ट जलका, प्रियतम!
घबरायीं-सी होकर सखियाँ हैं उसे निहार रही, प्रियतम!
तोता भी द्रुम-डालीपर है वैसे ही निरख रहा, प्रियतम!
शीतल समीरका वह झोंका, वैसा ही है अब भी, प्रियतम॥ ३७३॥

पूछा सहचरियोंने, 'कैसा अनुभव री! हुआ तुझे?', प्रियतम!
क्या कहती वह, बरबस पानी आँखोंमें भर आया, प्रियतम!
इच्छा न तनिक भी अब उसकी आगे बढ़नेकी थी, प्रियतम!
आयी थी जिस पथसे वनमें, उससे ही लौट पड़ी, प्रियतम॥ ३७४॥

आयी झाड़ी मेंहदीकी वह दक्षिण सीमावाली, प्रियतम!
नृपपुत्रीने उदास मनसे उसको ज्यों पार किया, प्रियतम!
आया, बस, कीर वही उड़कर, करके प्रणाम बोला, प्रियतम!
'संदेश एक है श्रीपदमें उन नीलदेवताका, प्रियतम॥ ३७५॥

सेवा न बनी कुछ भी सचमुच अरसिक मुझ किंकरसे, प्रियतम!
अपनी ही ओर देख, उरमें अविचल निवास देना, प्रियतम!
है नहीं मनोभ्रम, सच्ची है घटना सब इस वनकी, प्रियतम!
माला है झूल रही उरपर, झूलेगी नित्य तथा' प्रियतम॥ ३७६॥

वह वायुकोणमें कीर उड़ा कहकर इतना-सा ही, प्रियतम!
घर चली नृपतिपुत्री, अपना मन रखकर वनमें ही, प्रियतम!
सब बोल रही थीं सखियाँ, वह बोली न किंतु कुछ भी, प्रियतम!
ढाँचा वह भाव-तडिच्चालित तनका था लौट रहा, प्रियतम॥ ३७७॥

आते ही घर, मैया उरमें भरकर, दृगधारासे, प्रियतम!
नहलाकर, 'कैसे क्या देखा वनमें?' पूछने लगी, प्रियतम!
औरोंने बात कही, किञ्चित् छोटी छोरीने भी, प्रियतम!
केवल नीरव वह एक रही, कह सकी न बड़ी लली, प्रियतम॥ ३७८॥

उद्यान महलसे सटा हुआ, जो था विशाल उसका, प्रियतम!
उसमें ही जा बैठी उस दिन हो जानेपर संध्या, प्रियतम!
था प्रिय एकाकीपन उसको, सर्वथा आज, अब तो, प्रियतम!
उस वनकी वह नीली प्रतिमा मानो सम्मुख ही थी, प्रियतम॥ ३७९॥

तोतेके द्वारा प्रेषित वह संदेश देवताका, प्रियतम!
उसके कानोंमें गूँज रहा, मधुभरा निरन्तर था, प्रियतम!
त्वक् और नासिका, रसनामें अनुभूति भरी वह थी, प्रियतम!
जो भुजा समर्पणके क्षणमें उसको थी वहाँ हुई, प्रियतम॥ ३८०॥

दो घड़ी बीतते ही सखियाँ उसके समीप आयीं, प्रियतम!
उसको न किंतु दीखीं सब वे क्षण भर भी खड़ी वहाँ, प्रियतम!
उन पाँच-सातकी संख्यामें नीली प्रतिमा ही है, प्रियतम!
उसको यह अनुभव हुआ और विस्मयमें थी डूबी, प्रियतम॥ ३८१॥

बातें कितनी ही बार-बार कह गयीं न जाने वे, प्रियतम!
कानोंमें कोई भी उनकी वह उक्ति न किंतु गयी, प्रियतम!
हैं ओंठ हिल रहे, बोल रही नीली प्रतिमा ही है, प्रियतम!
'प्रियतमे! वल्लभे! प्राणेश्वरि!' यों थी प्रतीति होती, प्रियतम॥ ३८२॥

अविलम्ब महलमें ले जाना उसको आवश्यक था, प्रियतम!
जैसे उस सखी सयानीने उसका कर अब पकड़ा, प्रियतम!
मेरा है किया हस्त धारण नीली प्रतिमाने ही, प्रियतम!
यह लगा और अनुभूति हुई प्राणस्पर्शी सुखकी, प्रियतम॥ ३८३॥

विश्राम-कक्षमें उसको वे ज्यों-त्यों कर ले आयीं, प्रियतम!
थी बहिन कनिष्ठा लगा रही, सुरभित विलेप तनमें, प्रियतम!
यह भान हुआ उसको, सौरभ नीली प्रतिमामें है, प्रियतम!
उससे झरकर भर रहा और मेरे अङ्गोंमें है, प्रियतम॥ ३८४॥

ब्यारू न करा पायीं सखियाँ, तब अनुजाने अपनी, प्रियतम!
अधजूठ मिठाई वह उसके ओठोंपर तनिक रखी, प्रियतम!
है अधर-सुधा यह तो सचमुच नीली प्रतिमाकी ही, प्रियतम!
होने यह भान लगा उसको, खाती वह चली गयी, प्रियतम॥ ३८५॥

वैसे ही उसे पिलाया फिर कुछ जल भी अनुजाने, प्रियतम!
वैसे भी भुला-भुलाकर ही वह पान खिला पायी, प्रियतम!
है प्रीति-दान यह तो मुझको नीली प्रतिमाका ही, प्रियतम!
उसकी प्रतीति थी क्रमशः यह गाढ़ी होती जाती, प्रियतम॥ ३८६॥

थी एक पहर रजनी बीती, सहसा वह उठ बैठी, प्रियतम!
अपनी ही अहो! हथेलीपर जा टिकी आँख उसकी, प्रियतम!
दीखी वह पूरी-की-पूरी नीली प्रतिमा जैसी, प्रियतम!
ऊपर वह बाहु मूलतक था पूरा कर ही नीला, प्रियतम॥ ३८७॥

दो-तीन पलोंके अन्तरसे उसने लहँगा अपना, प्रियतम!
सरकाकर हेतु भरे दृगसे देखा अपने पदको, प्रियतम!
वे गुल्फ और घुटने सब थे नीली प्रतिमा जैसे, प्रियतम!
वैसा ही नीलापन पूरित पूरे चरणोंमें था, प्रियतम॥ ३८८॥

जाते न एक पल जाते ही उसको यह भान हुआ, प्रियतम!
नव चिह्न किशोरीपनका वह कोई न अङ्गमें है, प्रियतम!
मेरा तन भी यह पूरा है नीली प्रतिमा जैसा, प्रियतम!
आभूषणके बदले यह है वैसे ही वेणु धरे, प्रियतम॥ ३८९॥

थी दशा एक-दो पलतक तो उसकी विचित्र-सी ही, प्रियतम!
इस ऊहापोह-भँवरमें था उसका मन उलझ गया, प्रियतम!
रमणी हूँ या सर्वथा पुरुष, नीली प्रतिमा ही हूँ, प्रियतम!
परिवर्तन है सच यह अथवा हो रही भ्रमित मैं हूँ, प्रियतम॥ ३९०॥

आगे आधे पल मुँदी रहीं पलकें आधी उसकी, प्रियतम!
निर्णय उसको मिल गया और मन लीन हुआ उसमें, प्रियतम!
वह पर्यवसित मैं-पना हुआ नीली प्रतिमामें ही, प्रियतम!
सब ओर वहाँ अब फैल गयीं नीली-नीली लहरें, प्रियतम॥ ३९१॥

उसके पश्चात नीलिमाकी अव्यक्त परिस्थितिका, प्रियतम!
आगे फिर संविन्मयी उसी नीली रस-सत्ताका, प्रियतम!
जिसमें अप्रतिम पीतिमा भी वह नित्य विराजित है, प्रियतम!
अज्ञेय भला वह है, उसका, कैसे निर्देश करूँ, प्रियतम॥ ३९२॥

जब शरद निशा वह बीत चुकी पही सित परिवाकी, प्रियतम!
अपने उस राज-तनूजाके तनको, वह पकड़ सकी, प्रियतम!
मैया, मौसी, सब सहचरियाँ भारी चिन्तामें थीं, प्रियतम!
जो हुआ अचानक परिवर्तन उसमें, लेकर उसको, प्रियतम॥ ३९३॥

मैया कहती—'तू बतला दे, क्या हुआ लड़ैती री! प्रियतम!
जो भी चाहेगी तू, तुझको दूँगी अवश्य वह मैं' प्रियतम!
क्या कहै लड़ैती उसकी अब, कोई भी रुचि न रही, प्रियतम!
जा मिली चाह उसकी सारी, उन नील देवतामें, प्रियतम॥ ३९४॥

व्यवहार संतुलित कोई-सा, उसका न आज भी था, प्रियतम!
जब सखी पान करपर रखकर बोली—'बतला, क्या है?' प्रियतम!
उसने उत्तर यह दिया, 'तडित् वारिदमें रहती है प्रियतम!
पहले वह किंतु चमकती है, जलधर तब झरता है' प्रियतम॥ ३९५॥
सहचरी अलक रचना करने आयी, प्रस्ताव किया, प्रियतम!
पहले तो बोली कुछ न तथा बोली तब कह बैठी, प्रियतम!
'प्रियतामें सुख है, सुखमें है प्रियता, स्वभावसे ही, प्रियतम!
क्यों भेद अहो! फिर नित्य बढ़ें, ये इसीलिये तो हैं' प्रियतम॥ ३९६॥

'क्यों अरी! सुमन लेकर अर्चन करने न जायगी तू?' प्रियतम!
बोली लघु सखी, सुना उसने या नहीं, कौन जाने, प्रियतम!
धीमा स्वर निकला—'दी किसने यह बुद्धि पपीहे को?, प्रियतम!
मैंने या उनने या पाली उसने अपनेसे ही' प्रियतम॥ ३९७॥

अनमनी हुई वह बैठी थी, सम्मुख थे फूल खिले, प्रियतम!
कुछ कहा सहेलीने, पर वह कुछ और समझ बैठी, प्रियतम!
बोली—'यौवन ऐसा ही है, जैसे ये खिलते हैं, प्रियतम!
है नियम नहीं, अलि रस पी ले प्रत्येक पुष्पका ही' प्रियतम॥ ३९८॥

यों तीस घड़ी जाकर आयी दूजी तिथिकी रजनी, प्रियतम!
उसके प्रत्येक पहरमें वह भावित हो भाग चली, प्रियतम!
पहलेमें दीखा वे आये लेकर चम्पकमाला, प्रियतम!
झट डाल कण्ठमें चले, चली वह भी पीछे उनके, प्रियतम॥ ३९९॥

ले हार चमेलीका दीखे वे खड़े दूसरेमें, प्रियतम!
लेकर गजरा तीसरे पहर यूथीका वे आये, प्रियतम!
चौथेमें जवाकुसुमकी थी माला शोभित करमें, प्रियतम!
उनका रसदान उषाका वह अत्यन्त निराला था, प्रियतम॥ ४००॥

उसके पश्चात लोचनोंसे उसके जो स्रोत चला, प्रियतम!
चालीस पहर दो घड़ी भला, झरता ही सतत रहा, प्रियतम!
मानो वह राजसदन अब तो उसमें ही बूड़ चला, प्रियतम!
आया अलक्ष्य रक्षा कर तब उन नील देवताका, प्रियतम॥ ४०१॥

प्रातः था वही बहुश्रुत शुक आया उस कोनेसे, प्रियतम!
बोला—"श्रीपदमें प्रणति सरस उनकी पल-पल शत है, प्रियतम!
है और विनम्र निवेदन यह उनके अन्तस्तलका, प्रियतम!
'प्रियतमे! रखो धीरज, मुझसे अब नित्य मिलन होगा' प्रियतम॥ ४०२॥

पूरे हो रहे इसी क्षणसे बारह शुभ मास भला, प्रियतम!
उन्मत्त हुए मुनि थे तुमसे ले रहे विदा, तबसे, प्रियतम!
उनका प्रदत्त वरदान वही उसमें निमित्त होगा, प्रियतम!
जय हो! जय हो! निरवधि जय हो! श्रीचरण-सरोरुहकी" प्रियतम॥ ४०३॥

शीतल अवनीशनन्दिनीके वे अश्रु हुए पलमें, प्रियतम!
आनन सरोज मुरझाया वह, खिल उठा अहो! फिरसे, प्रियतम!
क्रन्दन-विरामका हेतु नहीं मिल सका किसीको भी, प्रियतम!
प्लावित पर अब सुखसे सब थे, हँस रहे तरणि भी थे, प्रियतम॥ ४०४॥

चतुर्थ शतक समाप्त

॥ विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ॥

पञ्चम शतक

थे अतिथि हुए कोपन अतिशय, ऋषि एक नृपति-गृहमें, प्रियतम!
दाढ़ी थी लंबी पिङ्गलाभ, सिरपर थी बँधी जटा, प्रियतम!
तपका था तेज भरा उनके लोचनमें, अङ्गोंमें, प्रियतम!
हुत्भुक था मानो मूर्तिमान, इतने तेजस्वी थे प्रियतम॥ ४०५॥

अवनीश गिरे चरणोंमें आ, रानीने पद धोये, प्रियतम!
विधिवत् अर्चा करके उनकी, कर जोड़, खड़े वे थे, प्रियतम!
गम्भीर हुए-से मुनि बोले-'राजन् धर्मज्ञ सुनो, प्रियतम!
रहना है सोलह पहर मुझे इस गृहमें जहाँ कहो' प्रियतम॥ ४०६॥

सोती थी जहाँ राजपुत्री, प्रासाद-कक्ष वह था, प्रियतम!
सबसे सुन्दर, नृपने उनको ठहराया उसमें ही, प्रियतम!
'जब एक घड़ी ध्यानस्थ यहाँ एकाकी मैं रह लूँ, प्रियतम!
आकर फिर तुम सेवा करना'-कहकर मुनि बैठ गये, प्रियतम॥ ४०७॥

करके प्रणाम राजा उनको, चल पड़े वहाँसे, हे प्रियतम!
सीधे आये कुलदेवीके मन्दिरमें दौड़े-से, प्रियतम!
परिचित मुनिके स्वभावसे थे, अतएव भीत मनसे, प्रियतम!
कह 'पाहि जननि!' सिर टेक दिया विग्रहके चरणोंमें, प्रियतम॥ ४०८॥

मुसकान कनकमय विग्रहके अधरोंपर भर आयी, प्रियतम!
वीणासे भी मीठी वाणी होने फिर व्यक्त लगी, प्रियतम!
'चिन्ता न करो तुम, वत्स! सुखद मिलना होगा इनका, प्रियतम!
अपनी दोनों दुहिताओंको आगे कर, यह कहना, प्रियतम॥ ४०९॥

मुनिपुंगव! जो है पुत्र एक, अत्यन्त चपल वह है, प्रियतम!
सेवाके योग्य चार हम हैं, चारोंको या दोको, प्रियतम!
स्वीकार करें, होऊँ कृतार्थ पाकर पदकी सेवा, प्रियतम!
जगजननीकी रुचि है पर यह, पुत्रीपर दया करें' प्रियतम॥ ४१०॥

निश्चिन्त नृपति रानीको ले, पुत्री युगको आये, प्रियतम!
लोचन मुनिके जब खुले, तभी वैसी ही की विनती, प्रियतम!
कन्या थी बड़ी गौर वर्णा, साँवरी कनिष्ठा थी, प्रियतम!
ज्यों दृष्टि पड़ी, मुनिके तनमें विद्युत्-सी व्याप गयी, प्रियतम॥ ४११॥

आसनको छोड़ उठे, कम्पित था रोम-रोम उनका, प्रियतम!
थीं पलकहीन आँखें, अञ्जलि बँध गयी अचानक थी, प्रियतम!
क्या हुआ, पता क्या, अचरजमें पड़कर रानी-राजा, प्रियतम!
करबद्ध खड़े थे, हँसती थी पर कन्या वह छोटी, प्रियतम॥ ४१२॥

डरकर रानीने कर रखकर ढक दिये अधर उसके, प्रियतम!
आकुल मुनिने संकेत किया, हाथोंको नचा-नचा, प्रियतम!
'छेड़ो मत, इसको करने दो, करती जैसे यह है' प्रियतम!
चल पड़ा आँसुओंका प्रवाह अब था दृगसे उनके, प्रियतम॥ ४१३॥

वह आम्रमञ्जरी-प्राशनकी, दो नगरवासियोंकी, प्रियतम!
नीली लहरोंवाली तटनी तटपरकी होलीकी, प्रियतम!
रसमयी पञ्चमीकी लीला, छप्पन शुभ मास तथा, प्रियतम!
दिन एक आजसे पहलेकी, ली देख तपोधनने, प्रियतम॥ ४१४॥

आराधन पञ्च देवताका नाना उपचारोंसे, प्रियतम!
हो रहा वहाँपर था, रानी सहयोग दे रही थीं, प्रियतम!
प्यारी प्राणोंसे बढ़कर उस अलबेली बेटीकी, प्रियतम!
रक्षाका भार सभी रखकर अपनी अनुजापर ही, प्रियतम॥ ४१५॥

उस समय ललीकी वयस मास सत्रहमें थे घटते, प्रियतम!
दिन तीन; किन्तु अब थी वह भी आँखें मूँदे रहती, प्रियतम!
वह एक नाम सुनकर अवश्य कुछ देर खोलती थी, प्रियतम!
वह भी तबसे, आये जब थे वे मुनि वीणाधारी, प्रियतम॥ ४१६॥

अथवा आती जब थीं अपने अप्रतिम लालको ले, प्रियतम!
गोपेश-गेहिनी-शिशु-तनका सौरभ मिलता रहता, प्रियतम!
उसके दृग-नलिन खुले रहते तबतक, वह किन्तु जहाँ, प्रियतम!
ओझल होता, पलकें तुरन्त मुद्रित हो जाती थीं, प्रियतम॥ ४१७॥

थे उसी प्रकार सलोने दृग खुलते, मीलित होते, प्रियतम!
गोदीमें उसको लेकर थी मौसी यह सोच रही, प्रियतम!
कम्पित होकर, पुलकित होकर, भरकर जल लोचनमें, प्रियतम!
रह-रहकर तन-सुधि भी खोकर,बहकर रस-वारिधिमें, प्रियतम॥ ४१८॥

होती जो एक अतुल ऐसी सुषमाशालिनी अहो, प्रियतम!
इसकी ही छोटी बहिन भला सुखदा सहोदरा ही, प्रियतम!
मैं उसे अङ्कमें लिये सदा रहती या इसको ही, प्रियतम!
भगिनीके वक्षस्थलपर यह शोभित या वह रहती, प्रियतम॥ ४१९॥

मनमें यह अभिलाषा जगकर, हो गयी विकल मौसी, प्रियतम!
तत्काल अनुग्रहमयी गिरा नभवाली गूँज उठी, प्रियतम!
'यह है त्रिकाल सच, जननि, इसे छूकर चाहो कुछ भी, प्रियतम!
मिलती ही है वह वस्तु,परम मंगल एवं होगा' प्रियतम॥ ४२०॥

मौसीके तन-मन फूल उठे, उस ओर हुई पूरी, प्रियतम!
देवोंकी सविधि अर्चना वह, ढप लगे तथा बजने, प्रियतम!
आकाश बना अरुणाभ, हुआ रवि-किरण-जाल धुँधला, प्रियतम!
आटोप अबीर-गुलाल रचित हो चला घना क्रमसे, प्रियतम॥ ४२१॥

उस दिनके उस अतिशय विशाल जन-समारोहमें, हे प्रियतम!
क्षणभरके लिये लली उतरी मौसीकी गोदीसे, प्रियतम!
इतनेमें सभी रमणियोंने, जो थीं अहीरपुरकी, प्रियतम!
रसभेंट लिये रानीको, फिर मौसीको घेर लिया, प्रियतम॥ ४२२॥

हो गयी लली कुछ दूर अहो! वैसे ही दृग मूँदे, प्रियतम!
ओठोंपर थी मुसकान भला, देती करताली थी, प्रियतम!
गा रही तथा कुछ थी धीरे, स्वर था इतना मीठा, प्रियतम!
भर चली मत्तता प्राणोंमें सबके अजानमें ही, प्रियतम॥ ४२३॥

मैं कौन, कहाँपर हूँ, क्या है करना मुझको, भूले, प्रियतम!
अञ्जलिमें लिये गुलाल तरल, सब-के-सब दौड़ चले, प्रियतम!
उस ओर जहाँ थी लली सृजन करती रसकी सरिता, प्रियतम!
नव-नव कुछ लहरोंका सुन्दर आवर्त चित्र लिखती, प्रियतम॥ ४२४॥

'ठहरो ठहरो! क्या करते हो? राजाकी यह बेटी, प्रियतम!
है खड़ी यहाँ, पिस जाती यह, होता जो मैं न यहाँ' प्रियतम!
स्वर उसी अनोखे बालकका, आभीर राजसुतका, प्रियतम!
सहसा सुखमत्त हुए सबके कानोंमें ध्वनित हुआ, प्रियतम॥ ४२५॥

ज्यों-के-त्यों सब रुक गये तथा दीखा यह संभव-सा, प्रियतम!
समवेत तरुण-तरुणी-वयस्क, सबके दृग छलक उठे, प्रियतम!
हँसता था केवल एक वही छोरा अहीर-नृपका, प्रियतम!
रानीकी सुता रूप उसका पी रही दृगोंसे थी, प्रियतम॥ ४२६॥

पन्द्रह-सोलह पल जब बीते, प्रकृतिस्थ हुईं रानी, प्रियतम!
बोलीं एवं हँसकर-'मेरे रे लाल नैनतारा, प्रियतम!
तू ही था, तू ही है, आगे निरवधि तू ही होगा, प्रियतम!
हरदम सँभाल रखनेवाला मेरी इस बेटीकी' प्रियतम॥ ४२७॥

लोचन खिल उठे सभीके, ज्यों यह उक्ति सुनी सबने, प्रियतम!
इतनेमें वही नीलसुन्दर बालक फिर बोल उठा, प्रियतम!
आँखें मटकाकर रानीसे-'दो पुरस्कार अब तो, प्रियतम!
दोगी तुरन्त या ले जाकर मुझको अपने गृहमें? प्रियतम॥ ४२८॥

सस्ते छूटोगी, दे दोगी जो अभी यहीं कुछ भी, प्रियतम!
ले गयी कदाचित् घरपर तो दूना देना होगा, प्रियतम!
है एक लाभ इसमें अवश्य, इन अहो! लाडिलीके, प्रियतम!
लोचन फिर तो मुद्रित होंगे क्षणभर भी नहीं कभी' प्रियतम॥ ४२९॥

'रे लाल! भला घर चलकर तो तू देख सही क्या-क्या, प्रियतम!
देती हूँ मैं तुझको; पर फिर कुछ दिन रहना होगा, प्रियतम!
अपना पूरा घर सौंप, अहो! सचमुच दूँगी तुझको, प्रियतम!
मनमानी तू करते रहना, रोकूँगी नहीं कभी' प्रियतम॥ ४३०॥

हँस पड़ी ठठाकर कहकर, कर धरकर शिशुका रानी, प्रियतम!
चलनेके लिये तुरन्त हुआ सम्मत वह बालक भी, प्रियतम!
गोपेश-गेहिनी मुसकाकर बोलीं-'साँवला अरे, प्रियतम!
आवास करेगा उजियारा फिर, कौन नित्य मेरा?' प्रियतम॥ ४३१॥

'मैया री! अच्छा, सुन ले यह, तू समझ नहीं पायी, प्रियतम!
मैं एक साथ दोनों गृहमें रह लूँगा देख सही' प्रियतम!
आरसी एक चम-चम करती थी पड़ी पासमें ही, प्रियतम!
मरकत-साँवर छोरा बोला होकर समक्ष उसके, प्रियतम॥ ४३२॥

'तेरे घर तो मैं स्वयं नित्य हूँ और रहूँगा ही, प्रियतम!
अब अहो! प्रतिच्छाया मेरी रानीको यह दूँगा, प्रियतम!
इनकी दृगपुतरी बेटीजी श्रीजीके साथ सदा, प्रियतम!
मेरी यह छाया भी खेले, मैं तो खेलूँगा ही' प्रियतम॥ ४३३॥

कुञ्चित केशोंसे घिरा हुआ वह मुख नीला-नीला, प्रियतम!
हो गया मनोहर कितना था उस समय, कहूँ कैसे, प्रियतम!
जब आँख डूबती है उसमें, वाणी रुक जाती है, प्रियतम!
चलती है जब वह, मोहनता उसको ठग लेती है, प्रियतम॥ ४३४॥

जो हो रसमयी विनोद, अहो! उस लघु वयके शिशुका, प्रियतम!
सुनकर विचित्र सबके मनकी, क्षणभर हो गयी दशा, प्रियतम!
अचरज था एक और भारी, सबको प्रतीति यह थी, प्रियतम!
'मैं हूँ सन्निकट अवस्थित'-वह इस भाँति कह रहा है, प्रियतम॥ ४३५॥

ढल पड़े देव दिनकर अब थे, फिर भी उल्लास नया, प्रियतम!
प्रतिपल अदम्य था जाग रहा सबके प्राणोंमें ही, प्रियतम!
गोरी छोरी, साँवर छोरा, दृगमें थे भरे हुए, प्रियतम!
हो भान कहाँ किसको कैसे इस दृश्य कालगतिका, प्रियतम॥ ४३६॥

केवल थीं एक महारानी हो गयीं श्रमित मानो, प्रियतम!
हटकर उस जन-समूहसे वे बाहर थीं आ बैठी, प्रियतम!
गम्भीर सोचती-सी कुछ थीं, लोचन थे अर्ध खुले, प्रियतम!
लाडिली अङ्कमें थी राजित, मुट्ठी अपनी बाँधे, प्रियतम॥ ४३७॥

वह थी विनोदकी बात, किन्तु रानीमें समा गयी, प्रियतम!
बनकर लालसा बुद्धि-मनको मन्थन करनेवाली, प्रियतम!
यह बने कदाचित् संभव सच जगजननीकी रुचिसे, प्रियतम!
परछाँही, यदि वह आ सकती शिशु बनकर घर मेरे, प्रियतम॥ ४३८॥

हो जाती मैं निश्चिन्त उसे रखकर समीप इसके, प्रियतम!
यह खोल सलोनी आँखोंको हँसकर खेला करती, प्रियतम!
आता क्षण वह जब कर-अम्बुज इसके पीले होते, प्रियतम!
वह छाँह साँवरा बनती या संगिनी नित्य इसकी, प्रियतम॥ ४३९॥

यह अहो! चित्तधारा विरमित हो, उससे पहले ही, प्रियतम!
रानीकी आँखोंमें शत दस दिनकरकी ज्योति भरी, प्रियतम!
श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी खड़ी नभमें थीं पूछ रही, प्रियतम!
'है एक चाह, जो भी अबतक पूरी न तुरन्त हुई? प्रियतम॥ ४४०॥

इन नील देवताकी छाया चिन्मयी अनूप हुई, प्रियतम!
कन्या बनकर उदरस्थलमें तेरे प्रविष्ट होगी, प्रियतम!
रजनी है मंगलमयी परम पञ्चमी आजकी जो, प्रियतम!
आनेवाली अबसे, होगी अप्रतिम सुहागनिशा' प्रियतम॥ ४४१॥

अन्तर्हित हुईं महादेवी, यह कहकर रानीसे प्रियतम!
फिर उस दिनके उत्सवका जब आया विराम शुभ था, प्रियतम!
नारीदल एक ओर, नरदल उससे कुछ हट करके, प्रियतम!
नीली सरितामें अवगाहन करने लग गया वहाँ, प्रियतम॥ ४४२॥

उस ओर महामायाने दी रच एक नयी लीला, प्रियतम!
हो गये महाराजा भावित रसमय कुछ भावोंसे, प्रियतम!
अप्रतिम जितेन्द्रिय थे पर वे चञ्चल-से क्षणिक हुए, प्रियतम!
फिर चाह तीसरी संततिकी हो गयी प्रबल सहसा, प्रियतम॥ ४४३॥

पहुँचे जब घरपर संध्या थी हो चुकी, खिन्न वे थे, प्रियतम!
जगदम्बाके पदपद्मोंपर सिर रखकर वे रोये, प्रियतम!
संधिनी रूपिणी रानीमें संवित्-छाया नीली, प्रियतम!
वह व्यक्त हुई उस रजनीमें, नृप तब सब समझ सके, प्रियतम॥ ४४४॥

ज्योतिर्मय यही अतीत दृश्य, सब वर्तमान जैसा, प्रियतम!
बनकर उन मुनि पुंगवके था लोचनमें समा गया, प्रियतम!
गोरी-साँवरी नृपतिकी दो छोरियाँ न दीखी थीं, प्रियतम!
वे पर देवता युगल उनको प्रत्यक्ष दीखते थे, प्रियतम॥ ४४५॥

पाकर मुनिका संकेत नृपति, रानीको लिये हुए, प्रियतम!
बाहर उस सदर-कक्षसे थे, आ गये हाथ जोड़े, प्रियतम!
भीतर रह गयीं पुत्रियाँ दो, मुनिने आरम्भ किया, प्रियतम!
अर्चन उनका विह्वल होकर वाणीके पुष्पोंसे, प्रियतम॥ ४४६॥

गम्भीर हुई गोरी छोरी सुनती थी श्लोकोंको, प्रियतम!
उसकी भगिनी साँवरी किन्तु रह-रहकर हँस देती, प्रियतम!
दो दण्ड बीतनेपर सहसा मुनिकी जब गिरा रुकी, प्रियतम!
श्यामा छोरी चपला उनसे बोली मीठे स्वरमें, प्रियतम॥ ४४७॥

'मुनिराज! थक गये होगे सच, अबतक तुम खड़े-खड़े, प्रियतम!
आसनपर बैठो, अहो! श्रमित हो गयी खड़ी मैं तो' प्रियतम!
इतना-सा ही कहकर उनसे, कर-अलक कँपा करके, प्रियतम!
अपनी फिर बड़ी बहिनसे थी कहने लग गयी भला, प्रियतम॥ ४४८॥

'री! तू चुपचाप देखती है, मुनिवर भूखे होंगे, प्रियतम!
ये कोस न जाने कितने हैं चलकर घरपर आये, प्रियतम!
तू पूछ सही, लायें क्या हम, किसपर इनकी रुचि है, प्रियतम!
मेरे घर हैं तैयार नित्य वस्तुएँ सभी रसकी' प्रियतम॥ ४४९॥

गोरीने मन्द-मधुर हँसकर समझाया भगिनीको, प्रियतम!
रहनेके लिये अचञ्चल फिर कर-बद्ध हुई बोली, प्रियतम!
'ऋषिवर्य देव! हम दोनोंको पुत्रीवत् ही समझें, प्रियतम!
है पली लाड़में श्यामा यह, बातूनी अतः बनी, प्रियतम॥ ४५०॥

अब आप विराजें, कृपा करें, सेवा सब बतला दें, प्रियतम!
मैं स्वयं करूँगी पल-पलमें उत्साह नवीन लिये, प्रियतम!
यह भी कुछ कर देगी फिर जो भूलें होंगी हमसे, प्रियतम!
उनको तो क्षमा करेंगे ही, विश्वास सत्य यह है' प्रियतम॥ ४५१॥

वाणी क्या थी उसकी, मानो धारा थी सुधामयी, प्रियतम!
मुनिवरको, अहो! और भी वह सुधिहीन लगी करने, प्रियतम!
इतनेमें पुनः साँवरीने ऐसी चर्चा छेड़ी प्रियतम!
सुनकर जिसको हँस पड़ी बड़ी, बरबस ऊँचे स्वरमें, प्रियतम॥ ४५२॥

हो गयी समाधि शिथिल मुनिकी, दैवी प्रेरणा हुई, प्रियतम!
भावोंका सन्धिस्थल आया, माया-सी फिर फैली, प्रियतम!
आकर्षण अहो! छोरियोंमें यद्यपि था वैसा ही, प्रियतम!
असमोर्ध्व ईशतापर झीना आवरण एक आया, प्रियतम॥ ४५३॥

उन महातपोधनके उरमें, ऊसर जो अबतक था, प्रियतम!
अंकुर अभिनव वत्सलताका जग उठा, अहो! क्षणमें, प्रियतम!
नृपदुहिताओंके प्रति निर्मल अत्यन्त ममत्व लिये, प्रियतम!
बढ़ते पल्लवित और पुष्पित होते न विलम्ब हुआ, प्रियतम॥ ४५४॥

मध्याह्न हो चला था, श्यामा कर धारणकर ऋषिके, प्रियतम!
बोली-'तुम हुए नये बाबा हम दोनों बहिनोंके, प्रियतम!
अब आज इसी क्षणसे, जो सब सहचरी हमारी हैं, प्रियतम!
वे भी इस भाँति मानकर ही सर्वदा पुकारेंगी, प्रियतम॥ ४५५॥

हमसे है बड़ा सहोदर जो प्यारा अतिशय भाई, प्रियतम!
काननमें चरा रहा है वह इस समय धेनुओंको, प्रियतम!
संध्या होनेपर आयेगा, उससे भी कह दूँगी, प्रियतम!
वह और समस्त सखा उसके ऐसा ही मानेंगे, प्रियतम॥ ४५६॥

वे सब हैं पर अतिशय चञ्चल, जो छेड़ कहीं वे लें, प्रियतम!
तुम रुष्ट नहीं होना उनसे, उनका स्वभाव यह है, प्रियतम!
प्यारी अत्यन्त बहिन मैं हूँ उन सबकी ही, फिर भी, प्रियतम!
मुझको भी कभी-कभी सब वे देते हैं रुला भला, प्रियतम॥ ४५७॥

अब चलो, सरोवरमें तुमको हम दोनों नहलायें, प्रियतम!
जिसमें प्रतिदिन हमको मैया, मौसी नहलाती है, प्रियतम!
कमलोंसे भरा हुआ वह है, निर्मल जल है उसका, प्रियतम!
सुन्दर विहङ्ग हैं नित्य वहाँ कलरव करते रहते' प्रियतम॥ ४५८॥

छोरीकी सरस सरल वाणी मुनिवरके प्राणोंमें, प्रियतम!
अनुपम मादकता थी क्रमशः भर रही, मौन वे थे, प्रियतम!
क्या करें, कहें क्या उसे? नहीं निर्णय कर पाते थे, प्रियतम!
भावोंकी विमल नीर धारा आँखोंसे थी बहती, प्रियतम॥ ४५९॥

दोनोंके हाथोंमें ऋषिने अपनेको सौंप दिया, प्रियतम!
जो रुचे करो, पल-पल उनकी अनुभूति बदलती थी, प्रियतम!
हैं नृपति-तनूजा, नहीं, अहो! मेरी बेटी ये हैं, प्रियतम!
फिर इष्टदेवताकी झाँकी उनमें होने लगती, प्रियतम॥ ४६०॥

वह बड़ी राजपुत्री हँसकर जैसे-तैसे मुनिको, प्रियतम!
ले गयी सरोवरपर, सचेत कर-करके नहलाया, प्रियतम!
श्यामाने अङ्ग पोंछकर फिर परिधान दिया उनको, प्रियतम!
जैसे कठपुतली हों, उनने धारण कर लिया उसे, प्रियतम॥ ४६१॥

मध्याह्न कृत्य भी कहनेपर कर गये यन्त्रवत् ही, प्रियतम!
ले आयीं उसी कक्षमें वे उनका कर-युग पकड़े, प्रियतम!
आसीन हुए जब वे, उनसे बोली नृपलली बड़ी, प्रियतम!
'लाऊँ क्या, हे मुनीश! अब मैं भोजनकी सामग्री' प्रियतम॥ ४६२॥

कह उठी कनिष्ठा बहिन-'अरी! भोली सचमुच तू है, प्रियतम!
हैं ध्यानमग्न मुनि तो, उनको तू व्यर्थ छेड़ती है, प्रियतम!
जैसे मैं कहती हूँ कर ले; चल, खीर बना लायें, प्रियतम!
खा लेंगे जो ये स्वयं, ठीक है; नहीं खिला देना' प्रियतम॥ ४६३॥

फिर भी जब रुकी रही, लोचन उनकी ही ओर किये, प्रियतम!
ढलकी मुनि-दृगसे बूँद, मिली सम्मति हिलकर पलकें, प्रियतम!
हँसकर, आकर्षित करके लालीको अनुजा बोली, प्रियतम!
'तू कर विश्वास बात मेरी ऋषि मान सभी लेंगे' प्रियतम॥ ४६४॥

वे चलीं वहाँ पहुँचीं जननी थी जहाँ प्रतीक्षामें, प्रियतम!
उसकी ग्रीवामें झूल, लली साँवरी लगी कहने, प्रियतम!
अबतक उसकी अनुपस्थितिमें बातें जो हुईं वहाँ, प्रियतम!
सुनकर अवाक दस पल मैया रह गयी अचम्भेसे, प्रियतम॥ ४६५॥

पायस-रन्धनकी तैयारी उसने तुरन्त कर दी, प्रियतम!
लाडिली सलोने हाथोंसे प्रस्तुत कर ले आयी, प्रियतम!
समयोचित आसन आदि पूत विधिवत् सब रच करके, प्रियतम!
फिर हाथ जोड़ करके ऋषिसे विनती कर खड़ी रही, प्रियतम॥ ४६६॥

वे उठे विराज गये आकर, आचमन किया उनने, प्रियतम!
अग्रिम कर्तव्य तुरन्त किन्तु वे पुनः भूल बैठे, प्रियतम!
रच करके ग्रास लाडिलीने अपने कर सरसिजसे, प्रियतम!
उनके मुखमें रख दिया, अहो! जय घोष हुआ नभमें, प्रियतम॥ ४६७॥

तन था गतिहीन, खा रहे थे वे खीर तथापि भला, प्रियतम!
लाडिली खिलाने वाली थी, इसलिये हुआ ऐसा, प्रियतम!
अन्यथा दशा उनकी ऐसी हो गयी उस समय थी, प्रियतम!
पायस तो दूर, नीरकणतक भीतर न उतर पाता, प्रियतम॥ ४६८॥

आचमन कराकर लालीने मुखवास दिया उनको, प्रियतम!
फिर नील सुकोमल मखमलकी शय्यापर बैठाया, प्रियतम!
आरती लगी करने गाकर महिमा उनके तपकी, प्रियतम!
अनुसरण साँवरी भी उसका कर रही सरसतम थी, प्रियतम॥ ४६९॥

जो भूत-भविष्यत्-वर्तमान माधुरी स्वरोंकी है, प्रियतम!
उसका उद्गम जो है जिसको छू सकी न बुद्धि गिरा, प्रियतम!
जो नित्य सनातन अद्भुत है मीठा अनुपम, उसको, प्रियतम!
पा लिया छोरियोंके स्वरमें उन महातपस्वीने, प्रियतम॥ ४७०॥

क्षणमें वे अन्तर्मुख होते, बाहर आते क्षणमें, प्रियतम!
आखिर लग गये झूमने वे उठकर धीरे-धीरे, प्रियतम!
नीराजन पात्र लाडिलीके कर-नलिन-दलोंसे वे, प्रियतम!
लेकर, विक्षिप्त चित्त होकर लग गये नृत्य करने, प्रियतम॥ ४७१॥

हँसकर साँवरी तान भरकर, नूपुर रुनझुन करके, प्रियतम!
उस ताल-बन्धपर ही उनको सहयोग लगी देने, प्रियतम!
जाने ही बिना मुनीश मत्त अब अहो! लाडिलीकी, प्रियतम!
करने प्रदक्षिणा लगे, लली लज्जित रह गयी खड़ी, प्रियतम॥ ४७२॥

लगभग जब सवा घड़ी बीती, मुनिवरकी आँख खुली, प्रियतम!
भौंचक होकर उन दोनोंको लग गये देखने वे, प्रियतम!
आदरसे बड़ी लली उनको बैठा करके बोली, प्रियतम!
'थे अभी मुनीश आप भावित लोकोत्तर भावोंसे, प्रियतम॥ ४७३॥

बस, अतुल आपके निर्हैतुक, निस्सीम अनुग्रहसे, प्रियतम!
उसका दर्शन कर हम दोनों हो गयीं निहाल भला, प्रियतम!
अब समय आपके संध्योचित कृत्योंका आया है, प्रियतम!
कासार-कूलपर चलें, यहीं रहकर अथवा कर लें' प्रियतम॥ ४७४॥

मुनि अन्यमनस्क हुए आये सुन्दर उस सरपर ही, प्रियतम!
मज्जन करके दिनकरको जब वे अर्घ्य दे रहे थे, प्रियतम!
रवि ढले अस्तगिरिमें, उनके दृगपथमें आ न सके, प्रियतम!
वे नृपति-छोरियाँ ही नभमें हो रही अवस्थित थीं, प्रियतम॥ ४७५॥

होनेके लिये कृतार्थ परम मैं भी हूँ अतिथि हुआ, प्रियतम!
इस गृहमें, जिसकी धरणीका कण-कण पावनतम है, प्रियतम!
छूकर इन दोनोंके अभिनव पद अरुण सरोजोंको, प्रियतम!
जिनका किञ्जल्क सुदुर्लभ है योगीश-मुनीशोंको' प्रियतम॥ ४८८॥

क्षणभर वे रुके और निकली रसमयी पुनः वाणी, प्रियतम!
जैसे प्रसंगकी धाराको दे फेर शक्ति कोई, प्रियतम!
''हे नृप दम्पति! इनने मेरी सुन्दर जो की सेवा, प्रियतम!
कोई भी कर न सका अबतक, कर सकी नहीं कोई, प्रियतम॥ ४८९॥

मैं क्या इनको दूँ किन्तु सफल हो जाय वचन मेरा, प्रियतम!
इसलिये अवश्य कहूँगा कुछ दैवी इच्छासे ही, प्रियतम!
इस बड़ी लाडिलीके करसे अब बने रसोई जो, प्रियतम!
तत्क्षण रुजापहर हो अक्षय, सुस्वादु अनूप तथा, प्रियतम॥ ४९०॥

मुझको यह लगा अभी मानो, साँवरी कह रही हो, प्रियतम!
दिखलाकर अहो! लाडिलीको, 'वरदान मुझे देना, प्रियतम!
इसके प्रति पल-पल भाव, सदा अनुराग बढ़े मेरा' प्रियतम!
बस, मैं भी 'एवमस्तु' कहकर देता हूँ यही इसे, प्रियतम॥ ४९१॥

जा रहा किन्तु हूँ अब मैं तो, हे राजा! हे रानी! प्रियतम!
वे करुणामयी ललित अम्बा मुझको ले जायँ वहीं, प्रियतम!
होगा जो भाग पुनः मेरा, आऊँगा इस गृहमें, प्रियतम!
देखूँगा आँखें भर-भरकर इन दोनों शिशुओंको'' प्रियतम॥ ४९२॥

रुक गयी गिरा ऋषिकी, रोने लग गये सिसककर वे, प्रियतम!
रोने रानी लग गयीं, अहो! रो उठे विकल राजा, प्रियतम!
वह भाव-उदधि उनके दृगसे उमड़ा जो, अबतक है, प्रियतम!
दे रहा प्राण, वत्सलतासे सम्पुटित ईशताको, प्रियतम॥ ४९३॥

साँवरी और लाडिली अहो! मुनिवरसे लिपट गयीं, प्रियतम!
'बाबा! बाबा! तुम फिर आना'-कहकर भरकर आँखें, प्रियतम!
मुक्ताएँ फिर झर-झर साँवर-गोरे गालोंपर जो, प्रियतम!
फैलीं, उनको रो-रोकर मुनि लग गये चयन करने, प्रियतम॥ ४९४॥

जो क्रियाशील होती न कहीं रानी-नृप-मुनिवरमें, प्रियतम!
उस समय अचिन्त्य शक्ति कोई शासित करनेवाली, प्रियतम!
आसन्न-अनागत-गत समस्त इस दृश्य तमाशेको, प्रियतम!
हो जाती अहो! दशा दसवीं, उनकी व्याकुलतासे, प्रियतम॥ ४९५॥

जो हो, प्रवाह यह भावोंका हो गया नियन्त्रित-सा, प्रियतम!
ऋषिपदमें गिरकर पुनः पुनः, ललियोंको साथ लिये, प्रियतम!
उत्तरके निर्झरतक उनको पहुँचा कर, अनुमति पा, प्रियतम!
रानी-नृप लौटे, पागलसे मुनि समा गये वनमें, प्रियतम॥ ४९६॥

इसके पश्चात वर्ष पूरा होकर, फिरसे आयी, प्रियतम!
तिथि, यही शरदकी संध्या, थी नवरात्र-अष्टमीकी, प्रियतम!
महिषी-अवनीश चले गृहसे ज्यों, वटु इतनेमें ही, प्रियतम!
आया आदेश लिये, कुलके गुरुदेव महाऋषिका, प्रियतम॥ ४९७॥

'आनेकी आवश्यकता अब तुम दोनोंके न रही, प्रियतम!
सहचरी वर्गके सहित युगल दुहिताके द्वारा ही, प्रियतम!
नवनीत-दूध-दधि-घृत, जितना वे बिना परिश्रमके, प्रियतम!
ढो सकें, भेज देना कल तुम, दो घड़ी दिवस चढ़ते' प्रियतम॥ ४९८॥

अतएव सदाकी भाँति वहाँ दोनों, वे नहीं गये, प्रियतम!
होते ही सुप्रभात, भरकर उन सभी वस्तुओंको, प्रियतम!
सोनेके लघु-लघु कलशोंमें रानीने भेज दिया, प्रियतम!
रखकर सिरपर कन्याओंके, शत-शत सहचरियोंके, प्रियतम॥ ४९९॥

वे चलीं राजपथसे पहले, फिर तो अरण्यपथ ही, प्रियतम!
सुन्दर उनको प्रतिभात हुआ टेढ़ी पगडंडीका, प्रियतम!
दोनों ही ओर लताएँ थीं फूलोंसे लदी हुई, प्रियतम!
अत्यधिक फलोंका भार लिये हो रहे नमित तरु थे, प्रियतम॥ ५००॥

गा रहे विहङ्गम थे अगणित, रागिणी सरस ऐसी, प्रियतम!
गन्धर्व-रमणियाँ भी जिसकी छू सकीं न छाँह कभी, प्रियतम!
सौ, दो सौ पदके अन्तरसे निर्मित पावस-जलसे, प्रियतम!
छोटे ह्रद शतशः थे, जिनमें प्रस्फुटित कञ्ज अब थे, प्रियतम॥ ५०१॥

उड़कर गुन-गुन करता समूह भौंरोंका आता था, प्रियतम!
थी सत्य रसीली मति उसकी अपहृत हो रही वहाँ, प्रियतम!
लाडिली आदि सबके तनसे निःसृत उस सौरभको, प्रियतम!
पाकर, उनके मुखको अभिनव अरविन्द समझ करके, प्रियतम॥ ५०२॥

वे इसी मधुर पथसे पहुँचीं, आश्रमपर गुरुवरके, प्रियतम!
अर्चा, उन सब कुमारियोंकी, ऋषि परम सिद्धने की, प्रियतम!
भावोंकी भेंट समर्पित कर, फिर पट रंगस्थलका, प्रियतम!
परिवर्तन कर तन्मय होकर उनको कर दिया विदा, प्रियतम॥ ५०३॥

उत्तरकी पगडंडीसे वे लौटीं, रविकुण्ड मिला, प्रियतम!
श्यामा हठ कर बैठी, इसमें मैं आज नहाऊँगी, प्रियतम!
थी सदा साँवरीकी रुचि जो, थी वही लाडिलीकी, प्रियतम!
प्यारी सहचरी सयानीने दी राय किन्तु ऐसी, प्रियतम॥ ५०४॥

'री! क्यों न चलें फिर तो, अब वह अत्यन्त सन्निकट है, प्रियतम!
सुन्दरीसरोवरपर ही, जो रमणीय अप्रतिम है' प्रियतम!
पीने भर पानीके बदले, निर्झर पीयूष मिले, प्रियतम!
दक्षिण कर बहिन लाडिलीका धरकर साँवरी चली, प्रियतम॥ ५०५॥

पञ्चम शतक समाप्त

॥ विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ॥

षष्ठ शतक

ऋतु शरद विराजित थी वनमें, शुक्ला नौमी तिथि थी, प्रियतम!
प्रात:वेला थी बीत चुकी, संगव था हुआ अभी, प्रियतम!
सुन्दर अनेक शिशुओंको ले, जो समवयस्क सब थे, प्रियतम!
जा मस्त रहा था एक वहाँ बालक धीरे-धीरे, प्रियतम॥ ५०६॥

साँवर था, आगे-पीछे थीं उसके चलती गायें, प्रियतम!
रुकता रह-रहकर था किञ्चित्, फिर फूँक वेणु देता, प्रियतम!
ऐसी लहरी नि:सृत होती, जो पूरित हो जाती, प्रियतम!
नभमें, समीर, रविमें, जलमें, थलमें, मनमें सबके, प्रियतम॥ ५०७॥

हो जाता धर्म-विपर्यय था, चर-अचर-समूहोंमें, प्रियतम!
वह नाद मात्र बच जाता था, मिटकर सब कुछ मनसे, प्रियतम!
बहती इतनेमें अन्य लहर जो चेत करा देती, प्रियतम!
कौतुक होता था बालकका, हँसता वह देख उसे, प्रियतम ॥ ५०८॥

'भैयाओं! एक जानता हूँ मैं मन्त्र रहस्यभरा, प्रियतम!
उसको पढ़कर वंशीमें स्वर भर देता हूँ ऐसा, प्रियतम!
जो सुने वही पागल-पगली हो जाय, और तो क्या, प्रियतम!
देखो इन पाँच तत्त्वपर भी इसका परिणाम भला' प्रियतम॥ ५०९॥

कहकर साँवरने दिखलाया रत्नोंके पर्वतको, प्रियतम!
फिर गूँजा क्षणभर वेणु अहो! हीरे-पुखराज गले, प्रियतम!
पीली उज्ज्वल धारा बनकर बह चले सामने ही, प्रियतम!
गायें पीछेकी ओर कूद, लग गयीं रँभाने-सी, प्रियतम॥ ५१०॥

साँवर अब बायीं ओर मुड़ा, नीलम-सी लहरें थीं, प्रियतम!
सरितामें उठती, उसपर भी उसने जादू डाला, प्रियतम!
पूरी प्रवाहिणीका ही जल, पलमें आवर्त बना, प्रियतम!
जम गया दूसरे क्षण फिर वह, होकर हिम धरती-सा, प्रियतम॥ ५११॥

उन अगणित नीर-विहङ्गोंके तन अक्षत रहकर भी, प्रियतम!
पद यन्त्रित थे हिमके भीतर, पाँखें बस हिलती थीं, प्रियतम!
आवर्तस्थल था दीख रहा वापी विशाल जैसा, प्रियतम!
जलचारी मत्स्य आदि सब थे निस्पन्द पड़े जिसमें, प्रियतम॥ ५१२॥

ऊपर थे पद्मबन्धु हँसते, हँस पड़ा साँवरा भी, प्रियतम!
ध्वनि हुई वंशिकाकी निःसृत, दिनमणिको लक्ष्य किये, प्रियतम!
वह शारदीय रवि किरण राशि बन गयी सुधा शशिकी, प्रियतम!
नवमीका दिवस-काल दस पल राकासे भासित था, प्रियतम॥ ५१३॥

गति हुई धेनुकुल-खगकुलकी, अलिकुलकी, तरुकुलकी, प्रियतम!
उतने क्षण रजनी-कालोचित, दर्शक केवल शिशु थे, प्रियतम!
'अब करो पूर्ववत् इनको' यों बोले वे, बस, निकला, प्रियतम!
स्वर ललित, बह चला नीर सरित, उग उठे अंशुमाली, प्रियतम॥ ५१४॥

साँवर बोला-'शीतल-सुरभित-जीवनदाता, सबको, प्रियतम!
है पवन, किन्तु देखो मेरा जादू तुम इसपर भी, प्रियतम!
जैसे ही मैं फूँकूँगा स्वर, सम्मोहित कर इसको, प्रियतम!
होगा यह लीन एक मेरी नासा-मुख-वंशीमें' प्रियतम॥ ५१५॥

ऐसा ही हुआ, सभी बालक अचरजमें भरे हुए, प्रियतम!
लग गये देखने खेल, अहो! क्या बात दूरपरकी, प्रियतम!
प्रत्येक सखाको अनुभव था हो रहा न चलती है, प्रियतम!
उनकी ही साँस, किन्तु तब भी जीवित सब थे सुखसे, प्रियतम॥ ५१६॥

पल बीस-पचीस बीतनेपर गतिशील समीर हुआ, प्रियतम!
सुनकर रसमयी तान फिरसे, शिशुओंने प्रश्न किया, प्रियतम!
'हम अरे! कन्हैया भैया! थे कैसे सब बचे हुए? प्रियतम!
है सुना श्वास रुक जानेपर, मर जाता है प्राणी' प्रियतम॥ ५१७॥

हँस-हँसकर समाधान उनका कर रहा साँवरा था, प्रियतम!
'देखो, वंशीके छिद्रोंसे जो सुधा बरसती है, प्रियतम!
कोई भी क्षणभर एक बार सपनेमें भी पी ले, प्रियतम!
हो जाता है वह सदा अमर, तुम नित्य पी रहे हो' प्रियतम॥ ५१८॥

निर्मल था व्योम, दृष्टि उसपर अब गयी साँवरेकी, प्रियतम!
बोला-'है ऐसा कौन, गगन जो ले समेट नखमें? प्रियतम!
मैं अभी बजाकर वंशी यह करके दिखलाता हूँ, प्रियतम!
नभ, बायें पद अनाम नखमें मेरे आ सिमटेगा' प्रियतम॥ ५१९॥

धारा-सी मधुकी क्षणभर फिर बह चली वंशिकासे, प्रियतम!
इतनेमें जो अनुभूति हुई प्रत्येक सखा शिशुको, प्रियतम!
है सत्य अनिर्वचनीय शाख-शशधरके न्याय कहूँ, प्रियतम!
अवकाश-दान-दाता केवल तुम एक बच रहे थे, प्रियतम॥ ५२०॥

अब पुनः बहा पीयूष सरित, तब भावसमाधि खुली, प्रियतम!
शिशुओंको, लगे नहाने वे सब झूम-झूम उसमें, प्रियतम!
शत-शत हंसिनी-हंस दौड़े, जल-खगगण उड़ आये, प्रियतम!
उस ओर सहस्र मयूरोंके दलने आ घेर लिया, प्रियतम॥ ५२१॥

रव भरते समय जिधर झुकती ग्रीवा थी साँवरकी, प्रियतम!
दल मत्त विहङ्गोंका तत्क्षण गतिशील उधर होता, प्रियतम!
पल-पलमें सरस बदलती थी उनकी भङ्गीधारा, प्रियतम!
हाथोंसे पेट थामकर थे हँस रहे सभी शिशु वे, प्रियतम॥ ५२२॥

ज्यों होता क्षणिक विराम, अहो! मधुभरे वेणुरवका, प्रियतम!
रह-रहकर, जान-बूझकर ही साँवर यह करता था, प्रियतम!
उस समय विहङ्गोंमें आती प्रेमोत्थित जड़िमा जो, प्रियतम!
पा सकीं न एक निदर्शन भी उसका ब्रह्माणी भी, प्रियतम॥५२३॥

टप-टप सुमिष्ट बूँदें तरुकी शाखासे, पल्लवसे, प्रियतम!
फूलोंसे, बेलि समूहोंसे झर रही निरन्तर थीं, प्रियतम!
स्वरलहरीके चालनसे ही विहगोंकी चोंचोंको, प्रियतम!
साँवर ऊपर कर देता था, बूँदें गिरतीं उनमें, प्रियतम॥५२४॥

बारी अब वन्य चतुष्पदकीआयी रस लेनेकी, प्रियतम!
टेरी वंशिका साँवरेने उस गहन वनस्थलमें, प्रियतम!
हों हुए निमन्त्रित ऐसे वे, द्वीपी, करेणु-करिणी, प्रियतम!
भल्लूक-मृगी-मृग आदि दौड़ आ जुड़े वहाँ क्षणमें, प्रियतम॥५२५॥

हैं बैरहीन ये नित्य यहाँ, शिशु सभी जानते थे, प्रियतम!
भय हुआ न किञ्चित् भी उनको, चिहुँकी न गायतक भी, प्रियतम!
एवं पयस्विनी अमृतमयी ज्यों प्रसरित पुनः हुई, प्रियतम!
वे हुए भाव भावित चौपद जैसे न कह सकूँगी, प्रियतम॥५२६॥

पल बीस-पचीस खेल कर-कर, रसमत्त हुआ उनको, प्रियतम!
साँवरने स्वर संचालनसे वनमें फिर भेज दिया, प्रियतम!
शिशुओंने पूछा-'कान्हा रे! कैसे ये चले गये, प्रियतम!
दृग बन्द किये, वंशी जब थी बज रही यहीं, फिर भी' प्रियतम॥५२७॥

साँवरके अरुणिम अधरोंका सुस्मित वह हास बना, प्रियतम!
फिर तान एक मधुभरी छिड़ी, निर्णय शिशु कर न सके, प्रियतम!
पूरबसे या दक्षिणसे, है आ रही प्रतीचीसे, प्रियतम!
या उत्तरसे, कि धरातलसे ध्वनि यह या ऊपरसे, प्रियतम॥५२८॥

बोला साँवर-'सर्वत्र समा जाती है स्वरलहरी, प्रियतम!
मैं जिसको, जहाँ, जभी इसकी अनुभूति कराता हूँ, प्रियतम!
उसको ही वहीं प्रतीति तभी होने लग जाती है, प्रियतम!
तत्क्षण उसके तन-मनकी गति होती है लीन वहीं' प्रियतम॥ ५२९॥

ऐसे वंशी ध्वनिका प्रभाव शिशुओंको दिखलाता, प्रियतम!
हँस-हँसकर तथा स्वयं वह रस पीता मृगछौना-सा, प्रियतम!
चञ्चल साँवर बालक आया अतिशय सुरम्य वनमें, प्रियतम!
था एक जहाँ कासार बृहत्, तट फटिक-विनिर्मित थे, प्रियतम॥ ५३०॥

उद्भासित दिनकर-किरणोंसे सरसिज-संकुल जल था, प्रियतम!
थी तथा तडिल्लहरी-जैसी आभा भी फैल रही, प्रियतम!
बाला एवं सहचरियोंके अवगाहनकी क्रीडा, प्रियतम!
निर्बाध चल रही थी, तरु थे झंकृत कङ्कण-रवसे, प्रियतम॥ ५३१॥

कटिसे ऊपर थे अङ्ग सभी आवरणहीन सबके, प्रियतम!
भीगी अलकोंका जाल मात्र रह-रहकर ढक लेता, प्रियतम!
अप्रतिम रूपकी उन्मादी धाराको, भावोंको, प्रियतम!
पौगण्ड-किशोर-संधिपर जो जगकर थे झाँक रहे, प्रियतम॥ ५३२॥

उस जलविहारसे अरुण हुए लोचनकी सुषमासे, प्रियतम!
टोना-सी शक्ति बिखरती थी मोहित करनेवाली, प्रियतम!
त्रिभुवन-थिर-जङ्गमको; यह भी छोड़ो, अचरज देखो, प्रियतम!
हो गयी रुद्ध गति वहाँ भला त्रिभुवन-मन-मोहनकी, प्रियतम॥ ५३३॥

सचमुच था विश्वमोहन वह सुन्दर साँवर छोरा, प्रियतम!
गायोंको लिये अहो! जैसे पहुँचा, ज्यों दृष्टि पड़ी, प्रियतम!
उन आर्द्र कुन्तलोंसे मण्डित आननपर बालाके, प्रियतम!
वंशी चुप हुई, हुईं अपलक वे नित्य चपल आँखें, प्रियतम॥ ५३४॥

दो रसमय हृदयोंके जब है आता क्षण जुड़नेका, प्रियतम!
उसका संयोग कहाँ, कैसे लगता है, क्या जाने, प्रियतम!
वे सरल दुधमुँहे-से शिशु, जो सहचर थे साँवरके, प्रियतम!
अतएव सखाकी चादरको कर्षित कर वे बोले, प्रियतम॥ ५३५॥

'भैया! क्या है तू देख रहा, तेरे श्रीभैयाकी, प्रियतम!
बहिनें एवं उनकी सखियाँ हैं नहा रही सुखसे, प्रियतम!
चल, चल, विलम्ब मतकर, आगे क्रीडा करनी हो तो, प्रियतम!
या यहीं नहानेकी रुचि हो तेरी भी तो कह दे' प्रियतम॥ ५३६॥

साँवरने उत्तर नहीं दिया, ली दृष्टि हटा उसने, प्रियतम!
अविलम्ब उस तरफसे फिर वह चुपचाप चल पड़ा भी, प्रियतम!
प्रतिदिनके निर्धारित पथसे पूरबकी ओर बढ़ा, प्रियतम!
उल्लास नित्य रहता, उसकी छायातक पर न रही, प्रियतम॥ ५३७॥

शिशुओंने किया प्रयास अथक, जिससे हँस पड़े सखा, प्रियतम!
कृत्रिम मुसकान कभी क्षणभर होठोंपर, पर आती, प्रियतम!
कोई कौतुक न हुआ अतुलित, लग सकी न होड़ तथा, प्रियतम!
उनमें वह वेणु बजानेकी या शृङ्ग फूँकनेकी, प्रियतम॥ ५३८॥

आनेपर छाक, उसे लेकर साँवर अवश्य बैठा, प्रियतम!
भोजन-रस लेनेवालोंका मण्डल भी वहीं बना, प्रियतम!
केवल दो ग्रास लिये पर जब, उस दिन साँवरने ही, प्रियतम!
खाते कैसे शिशु वे, सब कुछ सामग्री पड़ी रही, प्रियतम॥ ५३९॥

कोमल तृणराशि हरितपर थीं गायें सब घूम रही, प्रियतम!
अपने चालक-दलसे चालित, उन भिन्न दिशाओंमें, प्रियतम!
अपराह्न कालतक काननमें, गिरिवरके, परिसरके, प्रियतम!
वे भी पर सत्य पेट भरकर चर सकीं न आज भला, प्रियतम॥ ५४०॥

साँवरकी अकस्मात ऐसी अत्यन्त उदासीके, प्रियतम!
कारणका मित्रमण्डली वह अनुमान लगाती थी, प्रियतम!
कोई सोचता-'कहीं, क्या तो मुझसे ही भूल हुई, प्रियतम!
या और किसी शिशुसे चिढ़कर हो रहा खिन्न यह है' प्रियतम॥ ५४१॥

आती यह बात किसीके थी मनमें भोरेपनकी, प्रियतम!
'क्षणभरमें अहो अलक्ष्य नजर लग सकती है इसको, प्रियतम!
इसलिये सदा मैया जैसे करती है, मैं कर दूँ' प्रियतम!
गोपुच्छ फिरा साँवरपर वह परिणाम देखता था, प्रियतम॥ ५४२॥

श्रीभैया तथा उसीने जब संकेत किया अपने, प्रियतम!
उस सुबल-अमित-सद्‌गुणशाली शिशुको तब, बस, ये दो, प्रियतम!
थे बात जान पाये सरपर आँखोंके मिलनेकी, प्रियतम!
साँवरकी और बहिन भोरी गोरी सहोदराकी, प्रियतम॥ ५४३॥

जब लगा प्रतीची क्षितिज देव रविका स्वागत करने, प्रियतम!
साँवर गो शिशुओंको लेकर वासस्थलपर आया, प्रियतम!
प्रतिदिन वंशीरव सुन पड़ता उपवनकी सीमासे, प्रियतम!
नीरव आगमन किंतु उसका था आज यही पहला, प्रियतम॥ ५४४॥

उद्विग्न हुए सब-के-सब ही आ गये ग्रामवासी, प्रियतम!
मैया छातीसे लगा उसे बेहाल हो रही थी, प्रियतम!
अपने अनमोल नीलमणिका आनन उदास इतना, प्रियतम!
उसने देखा था कभी नहीं अबतक सपनेमें भी, प्रियतम॥ ५४५॥

रोती जननीको देख हँसी सूखी साँवर हँसता, प्रियतम!
देता प्रबोध भी कहकर यह,'री! स्वस्थ सत्य मैं हूँ!' प्रियतम!
ब्यारूके लिये किन्तु जब वह बैठा, तब जननीको, प्रियतम!
विश्वास करा न सका खाकर आधेका आधा भी, प्रियतम॥ ५४६॥

दशमीके प्रातः भी उसका वैसा ही हाल रहा, प्रियतम!
मैयाके हाथोंसे प्रस्तुत नवनीत, दही मीठा, प्रियतम!
औंटाया हुआ दूध गाढ़ा, ओदन मिष्टान्न, सभी, प्रियतम!
वस्तुएँ कलेवाकी जो थीं, साँवरने चख भर ली, प्रियतम॥ ५४७॥

गोचारणके मिससे तुरन्त अटवीकी ओर चला, प्रियतम!
टोली गायोंकी, मित्रोंकी वैसी ही संग चली, प्रियतम!
पर अन्यमनस्कपना जो था साँवरका कल-सा ही, प्रियतम!
शिशुओंसे छिप न सका उसके किञ्चित् हँसनेपर भी, प्रियतम॥ ५४८॥

दैनन्दिन वह अरण्यका क्रम गोसंरक्षण वाला, प्रियतम!
पूरा कर साँझ समय साँवर वैसे ही घर लौटा, प्रियतम!
था हुआ छाक भोजन वनमें, बस, नाम मात्रका ही, प्रियतम!
कहनेके लिये पुनः उसने कर दी ब्यारू लीला, प्रियतम॥ ५४९॥

मैया कैसे धीरज धरती, थे प्राण विकल उसके, प्रियतम!
उन निपुण वैद्यवरको उसने बुलवाया छिप करके, प्रियतम!
भोरी थी वह, है नहीं, न था, होगा न कभी कोई, प्रियतम!
जो उसके नित्य निरामय उस शिशुकी नाड़ी परखे, प्रियतम॥ ५५०॥

आयी अब एकादशी वही अंकुशरूपा अघकी, प्रियतम!
केवल मैया ही नहीं, अखिल पुरवासी व्रती हुए, प्रियतम!
संकल्प किया यह सबने, श्रीनारायण सदय बनें, प्रियतम!
नीरोग नीलसुन्दर हो, बस, निर्जल रह गये सभी, प्रियतम॥ ५५१॥

उस ओर दशा क्या थी मनकी साँवरके, कौन कहे, प्रियतम!
दोनों वे सखा सयाने, बस, गति विधि थे देख रहे, प्रियतम!
हृत्तलमें उठी हुई लहरें प्रतिचित्रित हो जातीं, प्रियतम!
आननपर, वह उनको रोके, कितना ही क्यों न भले, प्रियतम॥ ५५२॥

आया अब कर्णिकार-वन, दृग उसके थे भर आये, प्रियतम!
पिङ्गल थी जहाँ शिला गिरिकी, बैठा वह आज वहीं, प्रियतम!
अपने पीले दुकूलपर ही थी दृष्टि गयी उसकी, प्रियतम!
कम्पन था हुआ क्षणिक उसके दो बार कलेवरमें, प्रियतम॥ ५५३॥

गहरी आँखोंसे अरुण नलिन-दलको उसने देखा प्रियतम!
प्रस्वेद कपोलोंपर उसके तत्क्षण भर आया था, प्रियतम!
थी उड़ी हंसिनी जब जल-कण उच्छलित हुए कुछ थे, प्रियतम!
साँवरने ठीक उसी क्षण था अपना लिलार छूआ, प्रियतम॥ ५५४॥

पीने पिरोइनी आयी थी निर्मल जल सरिताका, प्रियतम!
लहरोंके कुछ छींटे उसके मस्तकपर बिखर गये, प्रियतम!
किञ्चित्-सा कृष्ण-अंश उसके रोओंका भीग गया, प्रियतम!
साँवर था देख रहा, उसने अपनी अलकें छू लीं, प्रियतम॥ ५५५॥

दस पाँच सखा उसके जलमें सहसा थे कूद पड़े, प्रियतम!
करनेके लिये प्रसन्न उसे, तटपर था वह बैठा, प्रियतम!
भहरा उठती उनके मुखपर चिकुरावलि जब भीगी, प्रियतम!
जड़िमा साँवरके तनमें थी सुस्पष्ट दीख जाती, प्रियतम॥ ५५६॥

जो उसी जलाशयके समीप उत्तुङ्ग एक तरु था, प्रियतम!
दो दिवसोंसे उसके नीचे आकर रुक जाता था, प्रियतम!
वन जाते और लौटते भी आँखें उसकी उठतीं, प्रियतम!
सर तटकी ओर देख लेता, आहट-सी वह लेता, प्रियतम॥ ५५७॥

यों चतुर निरन्तर सहचर वे दोनों थे परख रहे, प्रियतम!
साँवरके मनोभावको, पर रखकर सुगुप्त उसको, प्रियतम!
करते थे परामर्श छिपकर, दोनों किस भाँति करें, प्रियतम!
प्राणोंके प्राण सुहृद्वरकी, किञ्चित् सहायता भी, प्रियतम॥ ५५८॥

जो थीं कल्याणमयी अम्बा आदरणीया सबकी, प्रियतम!
गैरिकवसना कुटीरदेवी महिमा अपारवाली, प्रियतम!
अणिमादि सिद्धियाँ छायामें जिनकी लोटा करतीं, प्रियतम!
उनसे ये परिचित थे, इनपर थी कृपा बड़ी उनकी, प्रियतम॥ ५५९॥

दोनोंकी राय हुई चलकर कह दें सब कुछ उनसे, प्रियतम!
वे परम अनुग्रहमयी हमें पथ उचित बता देंगी, प्रियतम!
है छिपा न कुछ उनसे, पर यह कर्तव्य हमारा है, प्रियतम!
स्वाहा हो जाय भले सब कुछ, साँवरको सुखी करें, प्रियतम॥ ५६०॥

इसलिये द्वादशी तिथिका जब अरुणोदय हुआ वहाँ, प्रियतम!
सर्वथा अलक्षित सबसे वे आश्रमपर जा पहुँचे, प्रियतम!
अम्बाके पदपर सिर रखकर बातें सब बतलायीं, प्रियतम!
वे हँसीं कुटीरवासिनी दे आलिङ्गन दोनोंको, प्रियतम॥ ५६१॥

'मैं अभी साथ चलती हूँ, तुम निश्चिन्त रहो, यह तो, प्रियतम!
आमुख है परम सुखद, भावी सुन्दर उस अभिनयका' प्रियतम!
वे तेजोमयी उठीं कहकर पहुँचीं निमेषमें ही, प्रियतम!
बालक दोनोंका कर पकड़े आभीर-राजगृहमें, प्रियतम॥ ५६२॥

साँवरकी वह उदास मैया दौड़ी, पद पकड़ लिये, प्रियतम!
लोचन थे बरस रहे उसके, इस ओर भगवतीके, प्रियतम!
फिर बँधे एक डोरीमें हों एवं आकर्षित हों, प्रियतम!
यों हुए इकट्ठे सभी वहाँ पुर-नर-नारी पलमें, प्रियतम॥ ५६३॥

नीरव थे सभी, चित्त पर अब हो रहा प्रफुल्लित था, प्रियतम!
उन पर्णकुटीरवासिनीकी इस समय उपस्थितिसे, प्रियतम!
सबका अनुभव यह था, सबकी रुचि ये रख देती हैं, प्रियतम!
सर्वथा असंभवको भी वे संभव कर देती हैं, प्रियतम॥ ५६४॥

प्राणोंका प्राण साँवरा यह अब रोगहीन होगा, प्रियतम!
आयी हैं ये सच हम सबको देने ही भीख यही, प्रियतम!
ये बात जाननेवाली हैं सबके अन्तस्तलकी, प्रियतम!
प्रत्यक्ष हमारे व्रतका फल मिल रहा अभी यह है, प्रियतम॥ ५६५॥

जो हो, पल सात-आठ पूरित सुखसिक्त मनोरथसे, प्रियतम!
बीते जब, पर्णकुटीवाली देवी मुसका करके, प्रियतम!
साँवरकी मैयाके सिरपर कर वरद फेर करके, प्रियतम!
बोलीं, रुक-रुककर कण्ठ अहो! उनका भी भर आता, प्रियतम॥ ५६६॥

'री गोपराजरानी! अपनी जेठानीसे कह दे, प्रियतम!
जो नगर महादेवीसे है प्रतिपालित, वह उसमें, प्रियतम!
जाकर नरपाल-गेहिनीकी वृद्धा, उस जननीसे, प्रियतम!
मिल लेगी, रहती है अब वह जामाताके घर ही, प्रियतम॥ ५६७॥

सुन्दर अत्यन्त उपाय एक निर्दोष अनोखा-सा, प्रियतम!
वृद्धा बतला देगी अतिशय तुम सबको सुखकारी, प्रियतम!
तू कर लेना, तेरा, मेरा, इस अखिल विश्वका ही, प्रियतम!
उर-हार अमोल नीलमणि यह रोगी न कभी होगा' प्रियतम॥ ५६८॥

'हे भगवति! सही स्वस्थ मैं हूँ, मैया तो भोली है, प्रियतम!
मुझमें अत्यन्त मोहवश है चिन्ता करती रहती' प्रियतम!
यह कहता-हँसता इतनेमें साँवर आ गया वहाँ, प्रियतम!
देवीके पद-वन्दनकर, कुछ लज्जित-सा खड़ा हुआ, प्रियतम॥ ५६९॥

गैरिकवसना अम्बा ऊँचे स्वरसे हँस पड़ीं भला, प्रियतम!
साँवरको अपने उरमें ले, छूकर ठोड़ी उसकी, प्रियतम!
आँखें छलकीं पर नेह लोर बाहर वह आ न सका, प्रियतम!
होकर संयत-सी फिर बोलीं वे लक्षितकर सबको, प्रियतम॥ ५७०॥

‘जननी यह नित्य साँवरेकी अप्रतिम भागवाली, प्रियतम!
भोरी ही नहीं, बावरी भी हरदम सचमुच है ही, प्रियतम!
इसका पर लाल सलोना अब, हो गया सयाना है, प्रियतम!
मानेगी क्या यह इतना भी, कोई कह कर देखो’ प्रियतम॥ ५७१॥

फिर तो देवीके अञ्चलमें चञ्चल होकर अपना, प्रियतम!
श्रीमुख विलीनकर साँवरने विनती-सी कुछ कर दी, प्रियतम!
केवल सुन सकीं उसे वे ही, स्वीकार कर लिया भी, प्रियतम!
‘ऐसा ही हो’-कहकर, सहला-सहलाकर कच उसके, प्रियतम॥ ५७२॥

जा बैठा साँवर अब अपनी मैयाकी गोदीमें, प्रियतम!
मैया खिल उठी, प्रसन्न वदन लखकर अपने सुतका, प्रियतम!
सबका मन डूब गया नीले आनन्द-हिलोरोंमें, प्रियतम!
कल्याणी देवी वे फिर जब बोलीं तब चेत हुआ, प्रियतम॥ ५७३॥

‘री गोकुलेशरानी! वनमें इसको अब जाने दो, प्रियतम!
जो रुचे कलेवा उतना सा, जितना, ही आज करे, प्रियतम!
वृद्धाकी बतलायी विधि वह, आचरित हुई जैसे, प्रियतम!
उसके पश्चात् निरन्तर रुचि परिवर्द्धित होगी ही’ प्रियतम॥ ५७४॥

वे महाप्रभावमयी समता-करुणा-वत्सलताकी, प्रियतम!
विग्रहरूपा अम्बा इतना कहती-कहती लौटीं प्रियतम!
तोरणतक साथ सभी उनके आये, इतनेमें ही, प्रियतम!
गिरते न पलक गिरते वे तो हो गयीं अदृश्य भला, प्रियतम॥ ५७५॥

साँवर भी मैयासे जल्दी-जल्दी लेकर छुट्टी, प्रियतम!
चल पड़ा धेनु आगेकर, फिर पथमें हँसकर बोला, प्रियतम!
‘भैयाओं! स्वप्न एक सुन्दर मैंने गत रजनीके, प्रियतम!
उस ठीक अन्तवाले क्षणमें देखा है, चलो, सुनो’ प्रियतम॥ ५७६॥

प्राचीतट विशद सुरम्य उसी सुन्दरीसरोवरका, प्रियतम!
आ गया और साँवला लाल गोपाल वहीं बैठा, प्रियतम!
सहचर-मण्डलकी उत्सुक थीं आँखें, द्रुम-सुमनोंसे, प्रियतम!
झरता था मधु, आरम्भ हुई सपनेकी वह गाथा, प्रियतम॥ ५७७॥

वह उधर नीलसुन्दरकी जो ताई थी, जा पहुँची, प्रियतम!
देवी रक्षित महीपपुरके उत्तरकी सीमामें, प्रियतम!
गिरिवरके सोतेको उसने, बस, पार किया ही था, प्रियतम!
वृद्धा मिल गयी वहीं जिससे मिलने आयी वह थी, प्रियतम॥ ५७८॥

किञ्चित् थी झुकी कमर उसकी, अब सितकेशी वह थी, प्रियतम!
थी ज्योति बनी दृगमें अब भी, कुछ घट जानेपर भी, प्रियतम!
लाठी करमें लेकर चलती सब ओर घूम आती, प्रियतम!
सब खेर-नगरकी जनता थी परिचित उस नानीसे, प्रियतम॥ ५७९॥

वह बड़े स्नेहसे मिली भला, साँवरकी ताईसे, प्रियतम!
स्वाभाविक बहुत बोलती थी, उसने ही पूछ लिया, प्रियतम!
'कैसे तुम आज, अकेली हो आयी? प्रसन्न सब हैं, प्रियतम!
वे लोग अहीरराजपुरके, है स्वस्थ नीलमणि तो?' प्रियतम॥ ५८०॥

अपने ही आप दैवगतिसे सुन्दर भूमिका बनी, प्रियतम!
बातें गत बीस पहरकी सब ताईने बतलायीं, प्रियतम!
सुन रही ध्यान देकर वह थी प्रत्येक बातको ही, प्रियतम!
थी जहाँ समझ न सकी, उसको दुहराकर पूछ लिया, प्रियतम॥ ५८१॥

सुनकर पर उन गैरिकवसना, ऐश्वर्यशालिनीकी, प्रियतम!
वह उक्ति रहस्यमयी शुचि, जो संबद्ध उसीसे थी, प्रियतम!
अत्यन्त पड़ी असमंजसमें, उत्तर वह दे न सकी, प्रियतम!
आ गयी याद थी बात एक संवत्सर पहलेकी, प्रियतम॥ ५८२॥

आये थे पुत्रीके घर ऋषि तेजस्वी एक महा, प्रियतम!
साँवरी दौहितीसे मैंने उनकी बातें पूछीं, प्रियतम!
मेरी मनुहारोंसे दबकर उसने थी बतला दीं, प्रियतम!
वह बात सुगुस, लाडिलीको उनके वर देनेकी, प्रियतम॥ ५८३॥

देवीने जिसकी ओर किया संकेत यही वह है, प्रियतम!
आमयहारी उपाय निश्चित; पर जो मैं कह दूँ तो, प्रियतम!
मेरी साँवरी अहो! मुझसे अत्यधिक रुष्ट होगी, प्रियतम!
विश्वासघातिनी कह-कहकर नाकों दम कर देगी, प्रियतम॥ ५८४॥

छोरा साँवरा, उधर वह है रोगी हो रहा तथा, प्रियतम!
देवी-रुचिकी हेला संभव है नहीं किसीसे भी, प्रियतम!
जैसे-तैसे श्यामाको फिर आगे फुसला लूँगी, प्रियतम!
इसके अतिरिक्त और तो क्या कर सकती हूँ अब मैं? प्रियतम॥ ५८५॥

इस भाँति घड़ी आधीतक वह चिन्तामें पड़ी रही, प्रियतम!
आखिर साँवरकी ताईसे उसने वह बात कही, प्रियतम!
दी राय और यह-'साँवरको कुछ वस्तु खिला देना, प्रियतम!
जो मेरी बड़ी दौहितीने राँधी हो, उसमेंसे' प्रियतम॥ ५८६॥

ताई तुरन्त लौटी, मैया साँवरकी थी बैठी, प्रियतम!
आकर आधेसे कुछ आगे वनके उस पथके ही, प्रियतम!
दोनों वे मिलीं, बात करके ताई फिरसे आयी, प्रियतम!
अत्यन्त वेगसे चलकर उस देवी पालितपुरमें, प्रियतम॥ ५८७॥

था डेढ़ पहर बाकी दिन अब, रानी अन्तःपुरके, प्रियतम!
आँगनमें थीं बैठी करती खिलवाड़ छोरियोंसे, प्रियतम!
दोनों बहिनें खेलने आज बाहर थीं नहीं गयी, प्रियतम!
अच्छा संयोग लगा, पहुँची वह ठीक समयसे ही, प्रियतम॥ ५८८॥

प्राणोंका प्यार भरा सुखमय आलिङ्गन दे उसको, प्रियतम!
रानीने आनेका कारण पूछा, फिर सुनते ही, प्रियतम!
ले गयीं तुरन्त लाडिलीकी दादीके पास उसे, प्रियतम!
वह पितामही रहती अब थी केवल पतिसेवामें, प्रियतम॥ ५८९॥

थे वृद्ध महाराजा प्रायः रहते समाधिमें ही, प्रियतम!
दो-दो थे पहर बीत जाते, खुलती न आँख उनकी, प्रियतम!
प्रातः फिर अर्ध निशामें वे कुछ देर बोलते थे, प्रियतम!
दादी उस समय पूछ लेती, जो कुछ करना होता, प्रियतम॥ ५९०॥

अतएव परम सुन्दर निर्णय दादीने यही दिया, प्रियतम!
'लाली तुरन्त अब आज यहीं रन्धन कुछ कर देगी, प्रियतम!
ब्यारूके समय नीलमणिको दे दो, प्रातः कल तो, प्रियतम!
मैं वहीं भेज दूँगी इसको, लेकर अनुमति इनकी, प्रियतम॥ ५९१॥

मेरी शत शुभाशीष कहना गोपेश-गेहिनीसे प्रियतम!
चिन्ता न करें, नीरोग नीलमणि नित्य रहेगा ही, प्रियतम!
लाली तो साँवरकी ही निधि, साँवर जननीकी है, प्रियतम!
चाहेंगी जब-जब वे तब यह रन्धन कर आयेगी' प्रियतम॥ ५९२॥

वैसा ही हुआ, द्वादशीके रवि गये अस्तगिरिमें, प्रियतम!
आकर वनसे अलिन्दमें जब साँवर खाने बैठा, प्रियतम!
वह एक कटोरा खीर जिसे ताई ले आयी थी, प्रियतम!
उसकी कैसी महिमा थी, यह जो देख सके, देखे, प्रियतम॥ ५९३॥

गोपेशपुरीके लोगोंकी चिन्ता हरनेवाली, प्रियतम!
वह रात एक नूतन उत्सव जैसी होकर बीती, प्रियतम!
आनेतक उषा, गूँजता था पत्तनके कण-कणमें, प्रियतम!
'श्रीमन्नारायण-नारायण' रव सतत भरा स्वरमें, प्रियतम॥ ५९४॥

वे महीपाल-गेहिनी उधर कुक्कुट रव सुनते ही, प्रियतम!
वन्दन कुलदेवीका करके उठ पड़ी शीघ्रतासे, प्रियतम!
निर्मञ्छन ललियोंका कर, फिर उनको प्रबुद्ध करके, प्रियतम!
नहलाकर अतुल वेषभूषा सुन्दर उनकी रच दी, प्रियतम॥ ५९५॥

आ पहुँचीं सब सहेलियाँ भी वैसी ही सजी धजी, प्रियतम!
प्राचीमें दीखा-सा ही था, ज्योतिर्मय रथ रविका, प्रियतम!
मन्दिरमें वृद्ध पितामहके एकत्र हुईं सब वे, प्रियतम!
आशीष लाडिलीको उनकी लेनी आवश्यक थी, प्रियतम॥ ५९६॥

दोनों उन अहो! पोतियोंपर, जो खड़ी सामने थीं, प्रियतम!
दादाकी दृष्टि गयी, वे तो उठ पड़े अधीर हुए, प्रियतम!
था यही प्रथम अवसर उनके जीवनका, जो उनमें, प्रियतम!
हो गया देखते ही उनको आवेश मोहका-सा, प्रियतम॥ ५९७॥

कर्तव्यपरायण होकर भी, निर्लिप्त सदा वे थे, प्रियतम!
था जन्म शाक्तकुलमें उनका, पर वैष्णवाग्र वे थे, प्रियतम!
क्षणभर भी पद्मनाथ-पदकी विस्मृति न कभी होती, प्रियतम!
अब तो व्यवहार-जगतसे वे सर्वथा अलग-से थे, प्रियतम॥ ५९८॥

दादीने हाथ पकड़ उनको आसनपर बैठाया, प्रियतम!
लाडिली, साँवरी एवं सब जो खड़ी छोरियाँ थीं, प्रियतम!
वन्दना अङ्कमें दादाके सिर रखकर सबने की, प्रियतम!
दादाजीके दृगसे झर-झर बूँदें थीं बरस रही, प्रियतम॥ ५९९॥

कोई न समझ पाया उनकी यह हुई अवस्था क्यों, प्रियतम!
संकेत अतः कर देती हूँ, दादाने यह देखा, प्रियतम!
'सच्चिदानन्दपरतत्त्व, अहो! अविषय मन-वाणीका, प्रियतम!
गोरी-साँवरी-नीलसुन्दर, इनसे अभिन्न ही हैं, प्रियतम॥ ६००॥

है खेल अनिर्वचनीय और निरुपम अचिन्त्य इनका, प्रियतम!
साँवर जिसको जितना-सा, जब दिखला दे, वह देखे, प्रियतम!
उतना-सा तभी, मर्म फिर भी अज्ञात रहेगा ही, प्रियतम!
अतएव नहीं पहचान सका अपनी पोती युगको' प्रियतम॥ ६०१ ॥

ऐसी अनुभूति पितामहको हो गयी और फिर वे, प्रियतम!
बह चले लहरमें संविद्के ऊपर वत्सलताकी, प्रियतम!
इच्छा थी सर्व-नियन्ताकी, दादाजी, अब आगे, प्रियतम!
हों मग्न रसोदधिमें, जो है वह परे ज्ञानसे भी, प्रियतम॥ ६०२॥

हो जाय न कहीं विलम्ब, डेढ़ योजन जाना जो था, प्रियतम!
दादीने उरसे लगा-लगा उन सबको विदा किया, प्रियतम!
हो अहो! जम्बुनदधाराके अन्दरसे चमक रही, प्रियतम!
मानो सुवर्णकी राशि भला, इस भाँति चलीं सब वे प्रियतम॥ ६०३ ॥

दूरी संकुचित अहो! पथकी हो गयी सत्य सहसा, प्रियतम!
लाडिली आदि सब जा पहुँचीं, आधी घटिकामें ही, प्रियतम!
साँवरकी मैयाने सबका कैसा सत्कार किया, प्रियतम!
वाणी कहनेका साहस कर, कर देगी विकृत उसे, प्रियतम॥ ६०४ ॥

हो प्रबल चाह सुननेकी यदि फिर भी तो यहाँ नहीं, प्रियतम!
आगे इस वनकी सीमासे, दोनों हम जब पहुँचें, प्रियतम!
तुम याद दिला देना, लज्जा सर्वथा त्याग दूँगी, प्रियतम!
प्राणोंमें अङ्कित चित्रोंका विवरण कर जाऊँगी, प्रियतम॥ ६०५ ॥

प्राणेश! अभी तो इतना ही सुनकर सन्तोष करो, प्रियतम!
लालीने सरस रसोई दी कर, एक घड़ीमें ही, प्रियतम!
भोजन कर, वेणु बजाता वन साँवरा जा रहा था, प्रियतम!
मैयाका प्यार अतुल होकर, लाली थी लौट रही, प्रियतम॥ ६०६ ॥

षष्ठ शतक समाप्त

॥ विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ॥

सप्तम शतक

अश्वत्थ पुराना एक बड़ा पथमें विचित्र-सा था, प्रियतम!
पत्रावलि पतझड़में उसकी गिरती थी नहीं कभी, प्रियतम!
रहता हरीतिमाका वह था अचरजका पुञ्ज बना, प्रियतम!
हरीतिमा और अचरजका था वह पुञ्ज बना रहता, प्रियतम!
जन गाथा थी, हो व्यक्त वहाँ देवी बैठा करती, प्रियतम ॥ ६०७ ॥

था नहीं कालका इसीलिये कोई प्रभाव पड़ता, प्रियतम!
उस तरुपर तथा मनोरथ थे पूरित होते सबके, प्रियतम!
जिसकी जैसी इच्छा होती, उसको वैसी मिलती, प्रियतम!
परिणाम किन्तु सबका होता मंगलमय परम सदा, प्रियतम ॥ ६०८ ॥

रहने दो स्वप्न अनुक्त यहीं इस पादपके नीचे, प्रियतम!
बालाने जो देखा, जब वह लौटी थी उस गृहसे, प्रियतम!
विश्राम लगी करने वह थी सखियोंके कहनेसे, प्रियतम!
क्षण एक मुँदी बस आँख, हुई अनुभूति रहस्यमयी, प्रियतम ॥ ६०९ ॥

संकेत भले सुन लो, यद्यपि रसका सागर वह है, प्रियतम!
यह गिरा न जाने क्यों कुण्ठित हो रही अचानक है, प्रियतम!
काननमें विविध विहङ्गम हैं रस लोलुप, किन्तु सभी, प्रियतम!
हैं रस-मर्मज्ञ नहीं पूरे, अतएव न समझेंगे, प्रियतम ॥ ६१० ॥

यह वही सिन्धु है अबतक जो नापा जा सका नहीं, प्रियतम!
है गहरायी कितनी, कोई बतला न सका, न सकी, प्रियतम!
नीचे जितना जो गया, गयी, बढ़ती ही मिली उसे, प्रियतम!
वह मरा, मरी, जो बचा, बची, गूँगा, गूँगी वह है, प्रियतम ॥ ६११ ॥

उस गूँगीकी इङ्गित कोई समझे, न समझ पाये, प्रियतम!
जो समझे, वह सब समझ गया, है नियम नहीं यह भी, प्रियतम!
गूँगी तो यह निर्णय करने आयेगी नहीं कभी, प्रियतम!
बहरी तो थी ही, अंधी, फिर पगली हो जाती है, प्रियतम ॥ ६१२ ॥

अस्तु, भगवत्याः योगमायायाः रंगस्थलोद्घाटनम्। ॥ ६१३ ॥

बालायाः स्वप्रारम्भः। ॥ ६१४ ॥

प्रियतमसंबन्धविस्मृतिः। ॥ ६१५ ॥

द्विरागमनानुभूतिः। ॥ ६१६ ॥

अनुजया सहगमनम्। ॥ ६१७ ॥

दुर्मदस्य पथप्रदर्शनम्। ॥ ६१८ ॥

पथि अननुभूतवैवाहिकवृत्तस्य चिन्तनम्। ॥ ६१९ ॥

रविसेतुं प्राप्य तत्र स्थित्वा बालायाः दुर्मदं प्रति सविनयमादेशदानम्॥ ६२० ॥

दुर्मदस्य तथैवाचरणम्। ॥ ६२१ ॥

रविमन्दिरदर्शनार्थं गमनं च। ॥ ६२२ ॥

बालायाः अनुजां प्रति स्वहृदवेदनाकथनम्। ॥ ६२३ ॥

अनुजायाः क्रन्दनम्। ॥ ६२४ ॥

मिथो धैर्यप्रदानम्। ॥ ६२५ ॥

बालायाः ग्रामप्रवेशः। ॥ ६२६ ॥

गृहप्रवेशः। ॥ ६२७ ॥

देवीपूजनम्। ॥ ६२८ ॥

बालायाः वृद्धापदयोः पतनम्। ॥ ६२९ ॥

मूर्च्छा। ॥ ६३० ॥

वृद्धाकृतविविधशीतलोपचारैः संज्ञालाभः। ॥ ६३१ ॥

आ पहुँची वही पर्णकुटियावाली देवी सहसा, प्रियतम!
बाला पहलेकी भाँति नहीं उनको पहचान सकी, प्रियतम!
केवल इतना-सा ही अनुभव उसको उस समय हुआ, प्रियतम!
मेरी रक्षा करनेवाली जगमें अब ये ही हैं, प्रियतम ॥ ६३२ ॥

देवीकूटोक्तिश्रवणेन बालायाः परित्राणाशा। ॥ ६३३ ॥

देव्याः सूर्यव्रतोपदेशः। ॥ ६३४ ॥

द्वादशवर्षीयनियमनिर्धारणम्। ॥ ६३५ ॥

वृद्धायाः सहर्षमनुमोदनम्। ॥ ६३६ ॥

बालाका, उसकी अनुजाका दुस्सह परिताप मिटा, प्रियतम!
पाकर अभीष्ट, देवी-पदमें दोनों ही लोट पड़ीं, प्रियतम!
वे दयामयी लेकर उनको चिपकाकर छातीसे, प्रियतम!
रोने लग गयीं, स्नेह उरकी सीमामें रह न सका, प्रियतम ॥ ६३७ ॥

बालायाः सूर्यार्चनारम्भः। ॥ ६३८ ॥

संध्यायां सहचरीसमागमः। ॥ ६३९ ॥

द्वितीयदिवसे अर्चनार्थ पुष्पचयनम्। ॥ ६४० ॥

उद्यानप्रवेशः। ॥ ६४१ ॥

उद्यानसौन्दर्यदर्शनम्। ॥ ६४२ ॥

प्रश्नः। ॥ ६४३ ॥

सहचर्याः उत्तरदानम्। ॥ ६४४ ॥

मानो था भरा सहचरीके उत्तरमें टोना-सा, प्रियतम!
बालाका कर कम्पित होकर गिर गया पुष्प-दोना, प्रियतम!
एवं कुछ कहे बिना ही वह चल पड़ी वाटिकासे, प्रियतम!
सीधे आकर कपाट गृहके कर लिये बन्द उसने, प्रियतम ॥ ६४५ ॥

श्रवणयोः तन्मयता। ॥ ६४६ ॥

अनाहारः। ॥ ६४७ ॥

निशि च। ॥ ६४८ ॥

निद्राभावः। ॥ ६४९ ॥

रवौ उदिते सति सहचर्याः आगमनम्। ॥ ६५० ॥

तस्याः बालादशादर्शनेन महदाश्चर्यम्। ॥ ६५१ ॥

सहचरीस्नेहाग्रहरुद्धायाः बालायाः हेतुकथनम्। ॥ ६५२ ॥

आँखें उस नर्म सहेलीकी, कारण वह सुनते ही, प्रियतम!
उल्लास-सहानुभूति-पूरित जल-बिन्दु-दान करती, प्रियतम!
संकेत मूक किञ्चित् देकर, चञ्चल कर बालाको, प्रियतम!
क्षणभर हो गयी निमीलित थीं, अनुजा सब देख रही, प्रियतम ॥ ६५३ ॥

अनुजाकृतसामयिकसेवा। ॥ ६५४ ॥

संध्याधिगमः। ॥ ६५५ ॥

मुरलीरवश्रवणम्। ॥ ६५६ ॥

रवप्रणेतारं प्रति आत्मनिवेदनम्। ॥ ६५७ ॥

चित्तस्य तन्नादमयत्वम्। ॥ ६५८ ॥

उषसि संध्याप्रदोषभ्रान्तिः। ॥ ६५९ ॥

देहविस्मृतिः। ॥ ६६० ॥

अनुजाके किये उपायोंसे बालाको चेत हुआ, प्रियतम!
हो सका भोरके कृत्योंका निर्वाह अधूरा-सा, प्रियतम!
अनुजा सँभालती थी प्रतिपल, अतएव परिस्थितिको, प्रियतम!
वृद्धा न तथा उसकी न सुता आभास पा सकी थीं, प्रियतम ॥ ६६१ ॥

अपराह्नसमये सहचर्याः चित्रपटदानम्। ॥ ६६२ ॥

बालायाः चित्रसौन्दर्यदर्शनम्। ॥ ६६३ ॥

विचित्रानुभूतिः। ॥ ६६४ ॥

तं अखिलरसामृतमूर्तिं बालकं प्रति आत्मोत्सर्गः। ॥ ६६५ ॥

बुद्धेः तद्रूपत्वम्। ॥ ६६६ ॥

सर्वत्र तद्दर्शनम्। ॥ ६६७ ॥

तस्यां रजन्यां चित्तस्याद्भुतवैक्लव्यम्। ॥ ६६८ ॥

बालाकी चित्त-दशा ऐसी हो गयी रातभरमें, प्रियतम!
जिसको वह सखी देखते ही चिन्तामें डूब गयी, प्रियतम!
लक्षण उन्माद रोगके सब उसमें थे दीख रहे, प्रियतम!
अच्छा था यही, सखीको वह पहचान गयी अब भी, प्रियतम ॥ ६६९ ॥

नामोच्चारणपूर्वकं मां मा स्पृश मा स्पृश इत्युक्त्वा पलायनम्॥ ६७० ॥

सहचर्याः समवरोधनम्। ॥ ६७१ ॥

बालायाः भृशं विलापः। ॥ ६७२ ॥

सहचर्याः सान्त्वनादानम्। ॥ ६७३ ॥

बालायाः शनैः शनैः स्वहृदयस्यानिवार्यपरितापकथनम्। ॥ ६७४ ॥

सहचर्याः हासः। ॥ ६७५ ॥

बालायाः सरसभ्रान्तिनिवारणं च। ॥ ६७६ ॥

आ गिरी धधकती ज्वालापर मानो जलधर-धारा, प्रियतम!
ऐसा परिणाम सहेलीके उस एक वाक्यका था, प्रियतम!
सुखमयी अचेतनताके मृदु करसे लालित होती, प्रियतम!
थी पड़ी अङ्कमें उसके दस-पंद्रह पलतक बाला, प्रियतम ॥ ६७७ ॥

सहचर्याः परिचयदानम्। ॥ ६७८ ॥

बालायाः भावाभिवृद्धिः। ॥ ६७९ ॥

सहचर्याः यथावसरं तं बालकं प्राप्य बालावृत्तकथनम्। ॥ ६८० ॥

बालकस्य स्वानभिज्ञताप्रदर्शनम्। ॥ ६८१ ॥

दिवसचतुष्टयानन्तरं बालां प्रति स्वाकर्षणाभावमूलकचेष्टा। ॥ ६८२ ॥

सहचर्याःभावविवर्द्धनार्थं विविधप्रयासः। ॥ ६८३ ॥

असफलता। ॥ ६८४ ॥

आखिर कुल-भय, लज्जा, गौरव, सब परित्याग करके, प्रियतम!
अपने सर्वस्व समर्पणका, अत्यन्त विवशताका, प्रियतम!
संकेत-चित्र शुचि पत्तेपर अङ्कितकर नखमणिसे, प्रियतम!
नीरद सुन्दर उस बालकको, बालाने भी भेजा, प्रियतम ॥ ६८५ ॥

तथापि नैराश्योपलब्धिः। ॥ ६८६ ॥

न भवति दुर्विपाकमूलेऽस्मिन् जन्मनि मत्प्राणनाथयोगः मम नवजन्मायुतमध्ये देवो दययिष्यत्यवश्यमेव इति बालायाः प्राणविसर्जनोपक्रमः॥ ६८७ ॥

कल्लोलिनीं प्राप्य प्रवाहनिरीक्षणम्। ॥ ६८८ ॥

सहचर्याः आगमनम्। ॥ ६८९ ॥

बालायाः तां आश्लिस्य क्रन्दनम्। ॥ ६९० ॥

महाप्रयाणपाथेयरूपतच्चित्रपटदर्शनस्य कामना। ॥ ६९१ ॥

तदपूर्तिः तस्य तत्रानुपलब्धेः। ॥ ६९२ ॥

यह सुख भी मन्द भाग्यवाली कैसे ले सकती है, प्रियतम!
मैं देख न सकी चित्रतक भी आराध्य देवताका, प्रियतम!
था उस दिन तो छविसे पूरित उरका कोना-कोना, प्रियतम!
देखूँ वे कहीं मिलें, विलीन कर सकूँ प्राण उनमें, प्रियतम ॥ ६९३ ॥

इत्युक्त्वा बालायाः नयननिमीलनम्। ॥ ६९४ ॥

सहचर्याः बालां अङ्के कृत्वा उच्चस्वरेण क्रन्दनम्। ॥ ६९५ ॥

तत्क्षणमेव तस्य महामरकतद्युतेः बालकस्य तत्रागमनम्। ॥ ६९६ ॥

जो नील पद्म रसना हो, फिर बन्धन न कालका हो, प्रियतम!
लेकर रसना तूलिका चित्र लिखती मैं रह जाऊँ, प्रियतम!
जो सुखद सखीको, बालाको अनुभूति हुई उसका, प्रियतम!
आ जानेसे उस बालकके, तब भी न लिख सकूँगी, प्रियतम ॥ ६९७ ॥

जैसे कोई कवि चुन-चुनकर कल्पना सरस अपनी, प्रियतम!
गुम्फितकर उसको मालामें प्राणोंमें ही रख ले, प्रियतम!
सम्मान-गर्वके करसे वह अस्पृष्ट सर्वथा हो, प्रियतम!
जो है उल्लास भरा उसमें, आया वह दोनोंमें, प्रियतम ॥ ६९८ ॥

पावन अनुरागमयी धारा दो, बह-बहकर दृगसे, प्रियतम!
इस देश कालकी सीमासे उस पार पहुँच करके, प्रियतम!
हो जायँ संगमित, उनमें जो शीतलता रहती है, प्रियतम!
थी आत्मसात कर रही वही दोनोंके प्राणोंको, प्रियतम॥ ६९९॥

है नहीं अहंता जहाँ, नहीं है बुद्धि, न ये गुण हैं, प्रियतम!
है नहीं प्रकृति भी जहाँ, अहो! केवल चिति-ही-चिति है, प्रियतम!
जो है गँभीरता नित्य वहाँ निरुपम अद्वयपनकी, प्रियतम!
थी व्यक्त हो रही वही भला दोनोंके प्राणोंमें, प्रियतम॥ ७००॥

कितना-सा समय लगा उनको इस कालमानसे था, प्रियतम!
अब पुनः लौटकर आनेमें तत्रस्थ कलेवरमें, प्रियतम!
जग उठे और सो गये अहो! शत बार चतुर्मुख थे, प्रियतम!
इतना-सा या दो दण्ड मात्र, तुम एक जानते हो, प्रियतम॥ ७०१॥

जो हो रजनीके अञ्चलमें बसनेवाली सुषमा, प्रियतम!
उनके लोचनकी पलकोंको छू-छूकर धीरेसे, प्रियतम!
संकेत लगी करने विशुद्ध रसकी उस पद्धतिका, प्रियतम!
वे तभी प्रकृति अपनी-अपनी स्वीकार कर सके थे, प्रियतम॥ ७०२॥

तीनोंके ही मुखसे कोई निःसृत न हुई वाणी, प्रियतम!
थी प्रणय-रोषकी छाया-सी क्षणभर केवल आयी, प्रियतम!
चञ्चल-सी हुई सहचरीके मुखपर, इतनेमें ही, प्रियतम!
आँखें उसकी उन दोनोंके आननपर नाच उठीं, प्रियतम॥ ७०३॥

बाला-बालकके गालोंपर जो बनी लोर रेखा, प्रियतम!
उसके ही अन्तरालसे था उनका उर बोल रहा, प्रियतम!
सहचरी भला अब बालकको क्या उपालम्भ देती, प्रियतम!
लग गयी याद करने रसकी भाषाका ककहारा, प्रियतम॥ ७०४॥

कल्लोलिनीं प्राप्य प्रवाहनिरीक्षणम्। ॥ ६८८ ॥

सहचर्याः आगमनम्। ॥ ६८९ ॥

बालायाः तां आश्लिस्य क्रन्दनम्। ॥ ६९० ॥

महाप्रयाणपाथेयरूपतच्चित्रपटदर्शनस्य कामना। ॥ ६९१ ॥

तदपूर्तिः तस्य तत्रानुपलब्धेः। ॥ ६९२ ॥

यह सुख भी मन्द भाग्यवाली कैसे ले सकती है, प्रियतम!
मैं देख न सकी चित्रतक भी आराध्य देवताका, प्रियतम!
था उस दिन तो छविसे पूरित उरका कोना-कोना, प्रियतम!
देखूँ वे कहीं मिलें, विलीन कर सकूँ प्राण उनमें, प्रियतम ॥ ६९३ ॥

इत्युक्त्वा बालायाः नयननिमीलनम्। ॥ ६९४ ॥

सहचर्याः बालां अङ्के कृत्वा उच्चस्वरेण क्रन्दनम्। ॥ ६९५ ॥

तत्क्षणमेव तस्य महामरकतद्युतेः बालकस्य तत्रागमनम्। ॥ ६९६ ॥

जो नील पद्म रसना हो, फिर बन्धन न कालका हो, प्रियतम!
लेकर रसना तूलिका चित्र लिखती मैं रह जाऊँ, प्रियतम!
जो सुखद सखीको, बालाको अनुभूति हुई उसका, प्रियतम!
आ जानेसे उस बालकके, तब भी न लिख सकूँगी, प्रियतम ॥ ६९७ ॥

जैसे कोई कवि चुन-चुनकर कल्पना सरस अपनी, प्रियतम!
गुम्फितकर उसको मालामें प्राणोंमें ही रख ले, प्रियतम!
सम्मान-गर्वके करसे वह अस्पृष्ट सर्वथा हो, प्रियतम!
जो है उल्लास भरा उसमें, आया वह दोनोंमें, प्रियतम ॥ ६९८ ॥

पावन अनुरागमयी धारा दो, बह-बहकर दृगसे, प्रियतम!
इस देश कालकी सीमासे उस पार पहुँच करके, प्रियतम!
हो जायँ संगमित, उनमें जो शीतलता रहती है, प्रियतम!
थी आत्मसात कर रही वही दोनोंके प्राणोंको, प्रियतम॥ ६९९॥

है नहीं अहंता जहाँ, नहीं है बुद्धि, न ये गुण हैं, प्रियतम!
है नहीं प्रकृति भी जहाँ, अहो! केवल चिति-ही-चिति है, प्रियतम!
जो है गँभीरता नित्य वहाँ निरुपम अद्वयपनकी, प्रियतम!
थी व्यक्त हो रही वही भला दोनोंके प्राणोंमें, प्रियतम॥ ७००॥

कितना-सा समय लगा उनको इस कालमानसे था, प्रियतम!
अब पुनः लौटकर आनेमें तत्रस्थ कलेवरमें, प्रियतम!
जग उठे और सो गये अहो! शत बार चतुर्मुख थे, प्रियतम!
इतना-सा या दो दण्ड मात्र, तुम एक जानते हो, प्रियतम॥ ७०१॥

जो हो रजनीके अञ्चलमें बसनेवाली सुषमा, प्रियतम!
उनके लोचनकी पलकोंको छू-छूकर धीरेसे, प्रियतम!
संकेत लगी करने विशुद्ध रसकी उस पद्धतिका, प्रियतम!
वे तभी प्रकृति अपनी-अपनी स्वीकार कर सके थे, प्रियतम॥ ७०२॥

तीनोंके ही मुखसे कोई निःसृत न हुई वाणी, प्रियतम!
थी प्रणय-रोषकी छाया-सी क्षणभर केवल आयी, प्रियतम!
चञ्चल-सी हुई सहचरीके मुखपर, इतनेमें ही, प्रियतम!
आँखें उसकी उन दोनोंके आननपर नाच उठीं, प्रियतम॥ ७०३॥

बाला-बालकके गालोंपर जो बनी लोर रेखा, प्रियतम!
उसके ही अन्तरालसे था उनका उर बोल रहा, प्रियतम!
सहचरी भला अब बालकको क्या उपालम्भ देती, प्रियतम!
लग गयी याद करने रसकी भाषाका ककहारा, प्रियतम॥ ७०४॥

साखी देता शशि था नभमें, ऊपर उठकर तरुसे, प्रियतम!
नीली प्रवाहिणी कल-कलकर शुभ गीत गा रही थी, प्रियतम!
धो रही सखी थी दृग-जलसे परिणयकी वेदीको, प्रियतम!
विद्युल्लहरीका कर धारणकर, कृष्ण वारिधर था, प्रियतम॥ ७०५॥

निर्मल था स्वप्न अहो! पर यह था लिये अँधेरा भी, प्रियतम!
संकल्प न था इसमें अद्भुत विक्षिप्तपना पर था, प्रियतम!
संविद् रसमय था फिर भी था हृत्तलकी आह लिये, प्रियतम!
बालाका तो सपना था, पर जीवन यह है रसका, प्रियतम॥ ७०६॥

उस सपनेमें ही जो सपना उसको था अन्य हुआ, प्रियतम!
कह देती हूँ किञ्चित् यदि कह पाऊँगी, हूँ रोती, प्रियतम!
प्राणोंको है अनुभूति किन्तु वे बोल नहीं पाते, प्रियतम!
अतएव जान सकता है वह, जो है अन्तर्यामी, प्रियतम॥ ७०७॥

सप्तम शतक समाप्त

॥ विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ॥

अष्टम शतक

जब उषा शयन-गृहमें आकर छू लेती बालाको, प्रियतम!
कहकर-'रजनी अब चली गयी, दे रही उसे मैं हूँ, प्रियतम!
हृत्तलका प्यार, सोचमें पड़ जो सो न सका, न सकी, प्रियतम!
है स्वप्न मिलन या सच्चा?' तब खुलती समाधि उसकी, प्रियतम ॥ ७०८ ॥

साँवर सहेज देते उसकी अलकें मुखपर बिखरी, प्रियतम!
आलस्य भरे, उन दोनोंकी आँखें मिलती जब थीं, प्रियतम!
साँवर बन जाते थे बाला, साँवर होती बाला, प्रियतम!
वे प्राण नहीं केवल, उनकी थी देह पलट जाती, प्रियतम ॥ ७०९ ॥

कङ्कणकी ध्वनि सहचरियोंकी इतनेमें सुन पड़ती, प्रियतम!
पहले-जैसे हो जाते थे क्षणभरमें दोनों ही, प्रियतम!
भीतर सब वे जब आ जातीं उनपर बलिहार हुई, प्रियतम!
लज्जित होकर अञ्चलसे थी ढक लेती मुख बाला, प्रियतम ॥ ७१० ॥

मंगल-नीराजन करती थीं उनका सब सहचरियाँ, प्रियतम!
'जोरी जीओ युग-युग' कहकर सुखमत्त सभी होतीं, प्रियतम!
झर पड़ते बाला-साँवरके दृगसे जलके कण थे, प्रियतम!
रव भरा कणोंमें यह रहता-'होंगे न उऋण तुमसे' प्रियतम ॥ ७११ ॥

शीतल समीर सौरभका ले उपहार विनय करता, प्रियतम!
'अब चलो, युगल दम्पति! तुम हे, काननकी वल्लरियाँ, प्रियतम!
पुष्पित हो तरुसे जुड़कर हैं हिल-हिलकर देख रहीं, प्रियतम!
पथ तुम दोनोंका, आशा ले, मुख देख निहाल बनें' प्रियतम ॥ ७१२ ॥

वे ज्यों बाहर आते, दौड़ी आती रंगिणी मृगी, प्रियतम!
बालाकी कटिको छूकर थी संकेतोंमें कहती, प्रियतम!
'हो चपल चतुष्पद देते हैं फेरी उन कुञ्जोंकी, प्रियतम!
अङ्गोंकी तुम दोनोंके कल है गन्धभरी जिनमें' प्रियतम॥ ७१३॥

साँवर-बालाके अङ्गोंकी हरिताभ-पीत शोभा, प्रियतम!
अपने लोचन-अञ्चलमें भर, होकर मदमाती-सी, प्रियतम!
दो घड़ी अभी पहले जब थी ले रही विदा रजनी, प्रियतम!
चकई चकसे थी मिली हुई शशिसे जो यह कहती, प्रियतम॥ ७१४॥

'आना राकेश! पुनः सुखसे कूलोंपर सरिताके, प्रियतम!
कोसेंगे ये दोनों पंछी! होना न भीत हमसे, प्रियतम!
बाला-साँवर हैं नित्य यहाँ, होंगे न विलग हम भी, प्रियतम!
दुःखद निसर्गके नियम यहाँ लागू होंगे न कभी' प्रियतम॥ ७१५॥

चर्चा प्रतिदिन कुछ ऐसी ही रसकी उनकी होती, प्रियतम!
उड़कर फिर शयन-भवनके थे आँगनमें वे आते, प्रियतम!
सारी-शुक आँख गड़ाकर थे उनको देखा करते, प्रियतम!
दम्पति विहङ्ग मुद्रा लखकर उन्मुक्त हँसी हँसते, प्रियतम॥ ७१६॥

शोभा देखते हुए वनकी, वे मन्द-मन्द गतिसे, प्रियतम!
चलते थे आगे, पीछे थीं चलती सब सहचरियाँ, प्रियतम!
फूलोंसे लदे हुए द्रुमकी अवलीसे झरती थी, प्रियतम!
सुमनोंकी राशि-राशि, उसपर दम्पति पद रखते थे, प्रियतम॥ ७१७॥

वे झूम लताएँ उठतीं, जब बाला अपने करमें, प्रियतम!
लेकर, साँवरके करमें थी उनको पकड़ा देती, प्रियतम!
कहकर देखो-'प्राणाधिक! ये कैसी हैं शीलवती, प्रियतम!
है नहीं स्वसुखकी गन्ध तथा इनमें, जय हो इनकी' प्रियतम॥ ७१८॥

सम्मुख कलिन्दनन्दिनी-कूल आ जाता इतनेमें, प्रियतम!
श्रीमुख, तटकी उज्ज्वलतामें प्रतिबिम्बित हो जाता, प्रियतम!
बाला हो जाती भ्रमित, अहो! हैं हम सच्चे या ये, प्रियतम!
साँवर हँसने लगते, तब वह थी भूल समझ पाती, प्रियतम॥ ७१९॥

मानो हंसिनी पीठपर थी लेने आयी उनको, प्रियतम!
ऐसा नाचती दीख जाती लहरोंपर सित नौका,प्रियतम!
साँवरको बाला कर्षित कर, उस दिव्य घाटवाले, प्रियतम!
पथपर चलकर जल्दीसे थी आरोहण कर जाती, प्रियतम॥ ७२०॥

अपने बायें करसे हँसकर थी डाँड़ थाम लेती, प्रियतम!
'प्राणेश! अहो! देखो, कितना सुन्दर मैं खेती हूँ' प्रियतम!
उसकी चितवन-वाणीमें जो रस निर्झर पूरित था, प्रियतम!
साँवरको मत्त बना देता, उसपर ढल पड़ते वे, प्रियतम॥ ७२१॥

'बलिहार अहो! निकुञ्जरानी!'-कहकर सहेलियाँ वे, प्रियतम!
उत्साहित बालाको करतीं, दूसरी डाँड़ खेती, प्रियतम!
उससे वह बात छिपानेका करती प्रयास, फिर भी, प्रियतम!
लेती वह देख, बोलती-'क्या इतनी निर्बल मैं हूँ?' प्रियतम॥ ७२२॥

साँवर मुसकाकर कहते-'री! तुम सब छोड़ो, देखो, प्रियतम!
मेरे प्राणोंकी रानीसे छू जानेका जादू, प्रियतम!
इनको छूकर मैं ही जब हूँ चञ्चल हरदम, फिर तो, प्रियतम!
यह डाँड़ चलेगी नाव तथा अपने-ही-आप भला' प्रियतम॥ ७२३॥

लज्जित होकर बाला तुरन्त थी हाथ हटा लेती, प्रियतम!
उस ओर सरितकी धारामें परिवर्तन हो जाता, प्रियतम!
हिल्लोलित लहरोंसे होकर तरणी चल पड़ती थी, प्रियतम!
बालाको उरमें भरकर थे 'जय-जय' साँवर कहते, प्रियतम॥ ७२४॥

उजली युगलित वरटावलि, जल-कुक्कुट टोली काली, प्रियतम!
उड़-उड़कर नाव घेर लेती, फैला-फैला पाँखें, प्रियतम!
आगे विहङ्ग वे कर देते अपनी-अपनी ग्रीवा, प्रियतम!
दम्पति उनको सहला-सहला, थे प्यार दान करते, प्रियतम॥ ७२५॥

सहसा लहरोंका वेग अहो! इतना बढ़ जाता था, प्रियतम!
तरणी डगमग करने लगती, बाला डर जाती थी, प्रियतम!
साँवर अञ्जलिमें जल लेकर उसका पद धो देते, प्रियतम!
देते फिर छींट तरंगोंपर, वे धीमी पड़ जातीं, प्रियतम॥ ७२६॥

'हे प्राणवल्लभे! सरिता यह छूना है चाह रही, प्रियतम!
तुमको, अतएव चलो, इसकी इच्छा अवश्य रख दें, प्रियतम!
है नीर न यहाँ गँभीर, तनिक लहँगा ऊँचा करके, प्रियतम!
चलना!' यह कहते साँवरके लोचन छल-छल करते, प्रियतम॥ ७२७॥

यों कहकर साँवर बालाको ले साथ उतर पड़ते, प्रियतम!
दोनोंके अतिशय सावधान रहकर चलनेपर भी, प्रियतम!
लहँगेकी नील किनारी वह गीली हो ही जाती, प्रियतम!
बाला हँस-हँसकर फिर रसमय थी उपालम्भ देती, प्रियतम॥ ७२८॥

नीली प्रवाहिणीके दक्षिण तटपर अब वे आते, प्रियतम!
अवली तमाल तरुकी जलको छू-छूकर हिलती थी, प्रियतम!
कर देते और नमित उसको साँवर, दक्षिण करसे, प्रियतम!
डोली-सी वह बनती, उसपर बालाको बैठाते, प्रियतम॥ ७२९॥

शोभा निहार पलभर वे भी आरोहण कर जाते, प्रियतम!
सहचरियाँ सुखमें भरकर थीं झोंटा देने लगती, प्रियतम!
अभिनव झूला-उत्सव-सा वह सचमुच हो जाता था, प्रियतम!
दम्पतिकी हँसी निराली, वह सबका मन हर लेती, प्रियतम॥ ७३०॥

मानो आती थी करने वह संकेत कालगतिका, प्रियतम!
शाखापर एक उसी तरुकी चढ़ती बंदरी अहो! प्रियतम!
बालाका ध्यान उधर बँटता, दृग चिन्ताकुल होते, प्रियतम!
साँवर भी स्वयं उतर नीचे उसको उतार लेते, प्रियतम॥ ७३१॥

दोनोंकी आँखें भर आतीं, मस्तक झुक जाता था, प्रियतम!
कंधेपर एक दूसरेके, कुछ बोल न वे पाते, प्रियतम!
आता प्रस्वेद गातसे था इतना कि वस्त्र उनके, प्रियतम!
उससे धुल जाते, यों लेते वे विदा परस्पर थे, प्रियतम॥ ७३२॥

दक्षिण पश्चिमकी ओर एक जाती पगडंडी थी, प्रियतम!
उसपर रुक-रुककर चल पड़ते, साँवर निहारते थे, प्रियतम!
बालाको आकुलता-विनती परिपूरित लोचनसे, प्रियतम!
पैंतीस-तीस पलमें होते ओझल तरुजालोंमें, प्रियतम॥ ७३३॥

निष्प्राण हुई-सी बाला अब चलती धीरे-धीरे, प्रियतम!
घर जाकर शय्यापर आँखें मूँदे पड़ जाती थी, प्रियतम!
थे प्राण नीलसुन्दर उसके, तन कहीं रहे, क्या था, प्रियतम!
प्राणोपम वह पर सखियोंको प्रिय था, सँभालतीं वे, प्रियतम॥ ७३४॥

आवेश भावका बालामें अद्भुत हो जाता था, प्रियतम!
ज्यों-की-त्यों सब घटनाओंको वह सत्य देख लेती, प्रियतम!
साँवरकी मैया, साँवर जो-जैसे घरपर करते, प्रियतम!
उसके निस्पन्द बन्द दृगपर अङ्कित यह हो जाता, प्रियतम॥ ७३५॥

बाला देखती, कालकी गति पीछे है सरक गयी, प्रियतम!
हैं क्रियाशील हो रही अघटघटनापटीयसी वे, प्रियतम!
है उषा लगी, अब जननी भी जग उठी, किन्तु भोली, प्रियतम!
साँवर रजनीमें बाहर थे घरसे, न समझ पायी, प्रियतम॥ ७३६॥

दीपककी लौसे निर्मञ्छन अपने सुतका करके, प्रियतम!
करने दधिमन्थन लगी सुधा-स्यन्दी स्वरमें गाती, प्रियतम!
उसके श्रवणोंमें पूरित है रुन-झुन-रव नूपुरका, प्रियतम!
आँखोंमें भरा नीलमणि है आँगनमें नाच रहा, प्रियतम॥ ७३७॥

नवनीत हुआ प्रस्तुत, समाधि मैयाकी अब टूटी, प्रियतम!
फिर उसी शयन-मन्दिरमें जा पहुँची धीरे-धीरे, प्रियतम!
साँवरके मुख-सरोजपरसे भ्रमरावलि-सी अलकें, प्रियतम!
मृदु करसे अपसारित कर वह फूली न समाती थी, प्रियतम॥ ७३८॥

अपने अर्बुद मैं प्राण लक्ष शतगुण तुझपर वारूँ, प्रियतम!
तू जाग लाल मेरा अमोल! हो चुका सबेरा है, प्रियतम!
आयेंगे अभी सखा तेरे, गायें पुकारती हैं, प्रियतम!
तुझको, जाकर दुह ले उनको, उठ तो, तू देख भला' प्रियतम॥ ७३९॥

यों प्रेमिल शत मनुहारोंसे साँवरको जगा सकी, प्रियतम!
होते-होते न मुखारी वे पूरी, अब भाग चले, प्रियतम!
आ पहुँचे गृह-संबद्ध उसी गोशालामें पलमें, प्रियतम!
वह धेनु समूह निहाल हुआ लखकर आनन नीला, प्रियतम॥ ७४०॥

इस भाँति देख लेती बाला रहकर अपने घर ही, प्रियतम!
जैसे-तैसे सहचरियाँ सब उसको प्रबुद्ध करतीं, प्रियतम!
रसभरे अनेक उपायोंसे निर्वाह करा पातीं, प्रियतम!
मुखशोधन, उद्वर्तन, मज्जन, परिधान, विभूषणका, प्रियतम॥ ७४१॥

इतनेमें आ जाती दूती साँवरकी मैयाकी, प्रियतम!
बालाको नित्य बुलाती थी अपने घर ही जननी, प्रियतम!
था अनुभव उसे, रसोई जो बाला छू देती है, प्रियतम!
साँवर भर पेट उसे ही है खाता, न अन्य कुछ भी, प्रियतम॥ ७४२॥

दूती एवं सब सहचरियाँ उसको ले चल पड़तीं, प्रियतम!
'साँवर-ही-साँवर' बालाको सर्वत्र दीख पड़ते, प्रियतम!
विक्षिप्त हुई-सी आ पाती घरपर वह साँवरके, प्रियतम!
उनका दर्शन होनेपर ही प्रकृतिस्थ कहीं होती, प्रियतम॥ ७४३॥

मैयासे मिलकर, साँवरके अग्रजकी जननीके, प्रियतम!
तत्त्वावधानमें रन्धनके होते थे काम सभी, प्रियतम!
सब कुछ करते रहनेपर भी बालाका मन रहता, प्रियतम!
डूबा प्रियतम साँवरके ही नीले-नीले तनमें, प्रियतम॥ ७४४॥

मैया भी उधर जुड़ी रहती, बस, एक नीलमणिसे, प्रियतम!
गाथाएँ उसे न जाने थीं कितनी गढ़नी पड़ती, प्रियतम!
वह तभी लगा पाती उबटन, उनको नहला पाती, प्रियतम!
शृङ्गार धरा पाती, भोजन-गृहमें ले आ पाती, प्रियतम॥ ७४५॥

साँवर फिर साथ सखागणके हँस-हँसकर थे खाते, प्रियतम!
भोजनका दृश्य अतुल निधि था सबके दृगका बनता, प्रियतम!
मैयाका स्नेह दबा लेता उसके चञ्चल सुतको, प्रियतम!
विश्राम पचीस-तीस पलतक हँसकर वह कर लेता, प्रियतम॥ ७४६॥

मुखरित मुरली-रवसे पत्तन होने अब वह लगता, प्रियतम!
धारा-सी तोरणसे बाहर गो-श्रेणी चल पड़ती, प्रियतम!
था नीलदेवता ही चालक उनका, वह भी चलता, प्रियतम!
बाला आवास अटारीसे अपलक निहारती थी, प्रियतम॥ ७४७॥

साँवर-जननीके हृत्तलकी निरुपम वत्सलतासे, प्रियतम!
होकर अभिषिक्त पुनः बाला वासस्थलपर आती, प्रियतम!
वैसे ही दसों दिशाओंमें साँवर दीखते उसे, प्रियतम!
बाहरका ज्ञान नहीं-सा ही उसमें रह जाता था, प्रियतम॥ ७४८॥

पगली-सी हुई बैठ जाती आकर बाहर गृहसे, प्रियतम!
उठता द्वितीय पट सर-तटपर नूतन रंगस्थलका, प्रियतम!
क्रीडा, वन-गमन जनित वियोग हुतभुक् करने आता, प्रियतम!
उद्गमथल था जलने लगता, सखियाँ सँभालती थीं, प्रियतम॥ ७४९॥

गिरिवर-परिसरमें सुन्दर वन जो आठ कुञ्जका है, प्रियतम!
उसमें ही किसी कुञ्जमें वे बालाको ले आतीं, प्रियतम!
साँवरकी बाट देखनेका पल वह युग-सा बनता, प्रियतम!
वे आ पाते जब दशा इधर दसवीं आने लगती, प्रियतम॥ ७५०॥

दोनोंके मिल जानेपर, अब चढ़ता रस-सागर जो, प्रियतम!
ऊँचापन है कितना उसका, आँका अबतक किसने, प्रियतम!
आँखें सहचरियोंकी डूबीं, तटपर उतरा न सकीं, प्रियतम!
कुञ्जोंकी द्रुम लतिकाएँ हैं जड़िमा-पूरित तबसे, प्रियतम॥ ७५१॥

जो हो, बालाको ले साँवर करते परिक्रमा-सी, प्रियतम!
प्रियतम-स्वरूप-विभावित उन दोनों सरोवरोंकी, प्रियतम!
नौकारोहण कर, हँस-हँसकर विकसित-सरोज-वनका, प्रियतम!
सौरभमय सुमन चयन कर-कर, निज सुख वितरण करते, प्रियतम॥ ७५२॥

निर्झर निकुञ्ज-तरु-पत्रोंसे मधुका झरता रहता, प्रियतम!
होता न विराम किसी ऋतुमें उसका, था जहाँ, वहीं, प्रियतम!
साँवर बालाको ले जाते, द्विगुणित होता झरना, प्रियतम!
दोनोंमें पुरइनके मधु भर वे उसे पिला, पीते, प्रियतम॥ ७५३॥

चन्दन-कामिनी-जाल निर्मित सम्मुख थी कुञ्ज-कुटी, प्रियतम!
दोनों विभोर हो भावोंसे, उसमें प्रविष्ट होते, प्रियतम!
उत्तरकी ओर दीखता था वन एक कल्पतरुका, प्रियतम!
ज्योतिर्मय सित-नीला, उसकी गाथा कहते सुनते, प्रियतम॥ ७५४॥

बालामें सुनते-सुनते ही आ जाती तन्मयता, प्रियतम!
विस्मरण उसे हो जाता था अपने स्वरूपका भी, प्रियतम!
अपने ही लिये प्रश्न करने लग जाती साँवरसे, प्रियतम!
साँवर भी होते भ्रमित, अहो! कैसे क्या समझाऊँ? प्रियतम॥ ७५५॥

ऐसे अवसरपर पुनः वही घटना घट जाती थी, प्रियतम!
जो महाभाव, है वह बनता रसराज एक पलमें, प्रियतम!
होता रसराज उधर परिणत, उस महाभाव-वपुमें, प्रियतम!
क्या कहूँ अनिर्वचनीय कथा रसमय उस विनिमयकी, प्रियतम॥ ७५६॥

दिनकरकी एक किरण सहसा दोनोंको छू लेती, प्रियतम!
'हो गयी देर है', यह उनमें संकल्प जाग उठता, प्रियतम!
अपने स्वरूपमें आकर, वे हँसकर चल पड़ते थे, प्रियतम!
सम्मुख कासार पुनः आता, प्रियतमा नामधारी, प्रियतम॥ ७५७॥

उसमें अवगाहनकी इच्छा जगती, निदाघ आता, प्रियतम!
दम्पतिकी रुचिकी ही ऋतुएँ अनुसरण वहाँ करतीं, प्रियतम!
पलभर ही पहले जल-थलमें ऋतु जो भी क्यों न रहे, प्रियतम!
तत्क्षण विलीन हो, नव सुषमा ले काल नया आता, प्रियतम॥ ७५८॥

बाला छूती जलको, साँवर तत्काल उछल पड़ते, प्रियतम!
फिर उसे अङ्कमें लेकर वे संतरण-खेल करते, प्रियतम!
कमलोंसे विरचित कन्दुककी क्रीडा भी नव होती, प्रियतम!
दम्पति तनका निरुपम सौरभ झर-झरकर सर भरता, प्रियतम॥ ७५९॥

जब भीग-भीग दृग बालाके अत्यन्त अरुण होते, प्रियतम!
पावन जलकेलि निराविल वह सुखमयी तभी थमती, प्रियतम!
दोनोंके भीगे कुन्तलको, गोरे-नीले तनको, प्रियतम!
जो पोंछ, वस्त्र पहनाती हैं, इतिहास गूढ़ उनका प्रियतम॥ ७६०॥

आते अब वकुल-कुञ्जमें वे चलकर मन्थर गतिसे, प्रियतम!
शृंगार धरानेका उनमें रसमय झगड़ा होता, प्रियतम!
यह कभी अनादि कालसे ही अबतक निर्णय न हुआ, प्रियतम!
भूषित कर सका, सकी पहले, सचमुच वह कौन, किसे, प्रियतम॥ ७६१॥

सुन्दर निकुञ्ज सुमनोंका है संबद्ध एक उससे, प्रियतम!
उसमें पधार पीयूष भरे वनफलका रस लेते, प्रियतम!
बालाके अधर पल्लवोंपर साँवरका, फिर उसका, प्रियतम!
उनके बिम्बाधरपर रखना फल दृगफल हो जाता, प्रियतम॥ ७६२॥

जो पीत-हरित मणि विरचित है मोहन निकुञ्ज उसमें प्रियतम!
विश्राम फूलकी शय्यापर वे एक दण्ड करते, प्रियतम!
जगकर फिर शीतल जल पीकर, शुक-सारीकी रचना, प्रियतम!
वह भावमयी सुनते-सुनते सुखसे अचेत होते, प्रियतम॥ ७६३॥

आकर तृणकी उस वेदीपर लेकर सोलह कौड़ी, प्रियतम!
फिर दाँव परस्पर अङ्गोंका वे लगा खेलते थे, प्रियतम!
जो दाँव जीत लेता, लेती, उसको अनुभव होता, प्रियतम!
मैं हारा, हार गयी, ऐसे रसभरे नियम कुछ थे, प्रियतम॥ ७६४॥

पश्चिमकी ओर अंशुमाली ढल पड़े दीख जाते, प्रियतम!
वे तब हीरक रवि मन्दिरमें अर्चन करने आते, प्रियतम!
साँवरका स्वरचित मन्त्रोंसे रवि पूजन करवाना, प्रियतम!
बालाके दृग-मनमें नव-नव सुखकी आशा भरता, प्रियतम॥ ७६५॥

इसके पश्चात बिछुड़नेकी जल पड़ती आग वही, प्रियतम!
साँवर सँभालने चल पड़ते, गो-सखा-समूहोंको, प्रियतम!
रजनीमें पुनर्मिलनकी उस आशाको लिये हुए, प्रियतम!
बाला मुरझायी माला-सी घर आकर पड़ रहती, प्रियतम॥ ७६६॥

सहचरी नवीन वेष भूषा उसकी रच देती थी, प्रियतम!
उस ओर वेणुरवसे वनका कण-कण पूरित होता, प्रियतम!
घर अतुल नीलमणि साँझ समय मैयाके थे आते, प्रियतम!
दर्शन फिर तनिक दूरसे थी कुछ पल बाला पाती, प्रियतम॥ ७६७॥

प्रत्येक वस्तुमें प्राणोंका रस भरकर ही मैया, प्रियतम!
उससे अपने सुतका लालन करके सुखिनी होती, प्रियतम!
पूरा करके प्रदोषका क्रम, साँवर सो जाते थे, प्रियतम!
त्रिभुवन-मोहन-मोहिनी शक्ति जननीको भी ढकती, प्रियतम॥ ७६८॥

निस्तब्ध निशा हो जानेपर साँवर उठ पड़ते थे, प्रियतम!
नीली सरिताके तटके उस वटके समीप आते, प्रियतम!
उस संकेत-स्थलपर बाला पहले ही आ जाती, प्रियतम!
अभिसार निराला यह उसका, अज्ञात सभीको था, प्रियतम॥ ७६९॥

भावोंका था आवेश एक उनमें विचित्र होता, प्रियतम!
प्रत्यक्ष परस्पर रहकर भी दोनों न देख पाते, प्रियतम!
हो आकुल एक दूसरेको निरुपाय ढूँढ़ते थे, प्रियतम!
दोनोंके लिये ध्येयमय था यह अखिल दृश्य बनता, प्रियतम॥ ७७०॥

यह लहर शमित होते-होते लग जाती एक घड़ी, प्रियतम!
जाकर तब कहीं भुजाओंका बन्धन लग पाता था, प्रियतम!
जो भी बड़भागिन खड़ी-खड़ी अवगाहन कर पायी, प्रियतम!
उन खोज-मिलनकी लहरोंमें, उसने समझा रसको, प्रियतम॥ ७७१॥

अब शुभ्र चाँदनीमें उनका धीरे-धीरे चलना, प्रियतम!
सरिताका नीर गुल्फपरिमित होकर पथ दे देना, प्रियतम!
हँसते-हँसते दोनोंका फिर उस पार उतर जाना, प्रियतम!
कहने जाकर यह, खो दूँगी इसकी सुन्दरताको, प्रियतम॥ ७७२॥

रासस्थलकी स्वर्णिम वेदी, स्वर्णिम वह मंच बड़ा, प्रियतम!
स्वर्णिम दण्डोंसे जुड़ी हुई स्वर्णिम वल्लरियाँ वे, प्रियतम!
स्वर्णिम वितान वह फूलोंका, स्वर्णिम खगकी श्रेणी, प्रियतम!
ये बरबस साँवर-बालाको आकर्षित कर लेते, प्रियतम॥ ७७३॥

आकर, इनको छू-छूकर वे दोनों खिल पड़ते थे, प्रियतम!
प्रस्तुत सब कुछ करके रखतीं सहचरियाँ पहलेसे, प्रियतम!
थे स्वयं आप साँवर करते अर्पित तमोल उनको, प्रियतम!
आरम्भ नृत्य फिर हो जाता बालाका, साँवरका, प्रियतम॥ ७७४॥

कबतक चलता वह नृत्य अहो! कैसे बतलाऊँ मैं, प्रियतम!
आँखोंमें है अबतक पूरित हल्लीशक मुद्राएँ, प्रियतम!
शशधर है ठीक मध्य नभमें वैसे ही गति भूले, प्रियतम!
वे मुग्ध देखते हैं साँवर, बाला है नाच रही, प्रियतम॥ ७७५॥

वैसे ही कटि झुक जाती है बालाकी पल-पलमें, प्रियतम!
अम्बर वक्षःस्थलका भी वह, वैसे ही चञ्चल है, प्रियतम!
वे कुण्डल भी वैसे ही हैं, हो रहे चपल दोनों, प्रियतम!
आनन-सरोजपर वैसे ही प्रस्वेद कणावलि है, प्रियतम॥ ७७६॥

गिर रहे फूल वैसे ही हैं झर-झरकर अलकोंसे, प्रियतम!
साँवर अपने दुकूलमें हैं कर रहे चयन उनको, प्रियतम!
वैसे ही नाच-नाच करके साँवर भी, बालाकी, प्रियतम!
कर रहे सरस अनुमोदन हैं उन नृत्य-भङ्गियोंका, प्रियतम॥ ७७७॥

रसमय तन्त्रोंके तार सभी वैसे ही झंकृत हैं, प्रियतम!
वैसे ही नूपुरका रुन-झुन सहयोग दे रहा है, प्रियतम!
वैसे ही तालबन्ध भी है पल-पल नवीन होता, प्रियतम!
वैसे ही बज उठती है वह साँवरकी करताली, प्रियतम॥ ७७८॥

इसपर मैं किन्तु सरस झीना आवरण डालकर ही, प्रियतम!
आगे चलती हूँ बालाको, साँवरको ले दृगमें, प्रियतम!
उस ओर नृत्य उन दोनोंका अविराम चल रहा है, प्रियतम!
वे उधर उसी क्षण हैं निकुञ्ज पथमें भी चल पड़ते, प्रियतम॥ ७७९॥

दक्षिण-उत्तर-विभाग युगपत् बन जाता क्रीडाका, प्रियतम!
दोनों ही ओर खेलते थे दोनों ही केवल वे, प्रियतम!
उत्तरकी ओर चलें पर हम, है देर घड़ी दोकी, प्रियतम!
है उषा सखी आनेवाली मिलने हम दोनोंसे, प्रियतम॥ ७८०॥

जो हो, निकुञ्जमें जब दोनों आकर विराजते थे, प्रियतम!
कौतुक विचित्र-सा वह उनमें होता रहस्यमय था, प्रियतम!
बाला कुछ सरस पहेली थी रखती समक्ष उनके, प्रियतम!
साँवर भी तनिक सोच, हँसकर उत्तर देते जाते, प्रियतम॥ ७८१॥

है प्रथम कौन? जो स्निग्ध बनी; फिर कौन? सुशीतल है, प्रियतम!
तीसरी? तरल सुरभित जो है; चौथी? सुस्मितवाली, प्रियतम!
पञ्चम? उज्ज्वल मणिमाला है; वह छठी? अमित मीठी, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम॥ ७८२॥

अब पहली? नित्य अरुण है; फिर? जीवनका जीवन है, प्रियतम!
तीसरी? लवणतानिधि है; अब? है बसी हुई मुखमें, प्रियतम!
पाँचवीं? अमल बूँदोंवाली; वह छठी? सुचिह्नित है, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम॥ ७८३॥

अब पहली? काली ताली है; फिर? पद्म राग रेखा, प्रियतम!
तीसरी? निराविल, पोली है; फिर? दीना पदवाली, प्रियतम!
अब? शशिका गुण धरनेवाली, फिर? पद-अँगुरीमें है, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम॥ ७८४॥

अब कौन ? सरसती रहती है; फिर ? रस-कलसीवाली, प्रियतम !
अब कौन ? छाप छलनेवाली, आगे ? प्रस्वेदभरी, प्रियतम !
फिर ? वह तिरछी चितवनमें है; अब ? तोरणलतिका है, प्रियतम !
मिल गयी ? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम ॥ ७८५ ॥

अब पहली ? बँधी हुई जो है;फिर ? दृग-निवासवाली, प्रियतम !
आगे ? वह निर्मल हासमयी; फिर ? असित बिन्दुवाली, प्रियतम !
पञ्चम ? आवरण कण्ठमें है; है छठी ? माँग भरती, प्रियतम !
मिल गयी ? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम ॥ ७८६ ॥

अब पहली ? कर धरनेवाली, फिर ? कर-पद-गतिवाली, प्रियतम !
अब ? काली रेखा है; आगे ? पलकोंसे जुड़ी हुई, प्रियतम !
पञ्चम ? पदकञ्ज विभूषित है; फिर ? है आलस्यभरी, प्रियतम !
मिल गयी ? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम ॥ ७८७ ॥

अब पहली ? लाल सलोंवाली; फिर ? उरपर रहती है, प्रियतम !
फिर ? पीली-नीली, पोली है; अब ? बसी होंठमें है, प्रियतम !
पञ्चम ? पद-रेखावाली है; वह छठी ? भुजामें है, प्रियतम !
मिल गयी ? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम ॥ ७८८ ॥

अब पहली ? कुण्डलवाली; फिर ? तनके कण-कणमें है, प्रियतम !
अब ? पद-पदपर जो मुखरा है; चौथी ? है कटि थामे, प्रियतम !
पञ्चम ? कुञ्चित कचमें है; फिर ? कर धरकर पीन बनी, प्रियतम !
मिल गयी ? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम ॥ ७८९ ॥

'अब अन्तिम कौन ?', उसे तो मैं छूकर बतलाऊँगा, प्रियतम !
कहकर यह, साँवर पहनाते कर-माला बालाको, प्रियतम !
तदनन्तर वे लहरें उठतीं जो उस रस-वारिधिमें, प्रियतम !
उनमें स्वरूपसे ही मज्जन करनेकी पद्धति है, प्रियतम ॥ ७९० ॥

अपने ऊपर, अपनेसे ही, अपनेको ही आगे, प्रियतम!
वे लहर दान करतीं रसमय वह रूप कूलका-सा, प्रियतम!
जिसपर उतरा आते साँवर, उतरा आती बाला, प्रियतम!
कुछ पलके लिये और उनमें बातें होने लगतीं, प्रियतम॥ ७९१॥

'प्रियतमे! कहानी एक कहो, तुम बहुत जानती हो' प्रियतम!
'प्राणाधिक! मैं सब भूल गयी, तुम तो कह सकते हो' प्रियतम!
'हे प्राणवल्लभे! नहीं, नहीं, मेरी रुचि यह रख दो' प्रियतम!
'अच्छा तो, सुनो; हुँकारी पर सुनकर देते रहना, प्रियतम॥ ७९२॥

बस्ती थी एक अहीरोंकी, उनका अधिपति भी था, प्रियतम!
उसका था एक तनूज चपल, जिसका तन था काला, प्रियतम!
त्रिभुवन-जन-मन-मोहक उसने पायी थी सुन्दरता, प्रियतम!
उस पर थीं बिना मोलके ही बिक गयी सभी तरुणी, प्रियतम॥ ७९३॥

कुछ देर अभी पहलेकी ही घटना बतलाती हूँ, प्रियतम!
उस काले बालकने, ऐसी वंशीमें तान भरी, प्रियतम!
सुनते ही जिसे अङ्गनाएँ, मोहित हो, रुक न सकीं, प्रियतम!
तत्क्षण, सब परित्याग करके उसके समीप आयीं, प्रियतम॥ ७९४॥

स्वागत करके पहले उसने, की कड़ी जाँच उनकी, प्रियतम!
डर दिखलाया, बहकाया भी, धर्मोचित दी शिक्षा, प्रियतम!
फिर पाठ पढ़ाया, बढ़नेका उसके प्रति भाव भला, प्रियतम!
प्राणोंमें टीस लगी चलने, सुन-सुनकर उन सबके, प्रियतम॥ ७९५॥

रो-रोकर उत्तर दे-देकर, वे खरी उतर आयीं, प्रियतम!
करुणाकी ऊर्मि उठी रसमय, हृत्तलमें बालकके, प्रियतम!
उनके जीवनकी साध सभी उसने पूरी कर दी, प्रियतम!
है किन्तु निराली प्रीति-रीति, बालक छिप गया कहीं, प्रियतम॥ ७९६॥

अच्छा सा एक बहाना भी उसको मिल गया अहो! प्रियतम!
छोरी थी एक, उसीमें था मन फँसा हुआ उसका, प्रियतम!
गोरी थी वह, बेटी थी उस नृपकी, जिसके तनमें, प्रियतम!
वे देव दिवाकर पूरित थे होकर हरदम रहते, प्रियतम॥ ७९७॥

उस छोरीको ही साथ लिये भागा वह बालक था, प्रियतम!
दीखा था म्लान हुआ-सा मुख, छोरीका बालकको, प्रियतम!
अतएव अमित सुन्दरियोंके उस नेह जालमें भी, प्रियतम!
सामर्थ्य रही न उसे अब जो उलझाकर रोक सके, प्रियतम॥ ७९८॥

इस ओर भूलनेका स्वभाव पल-पल, छोरीका था, प्रियतम!
हो भ्रमित, समझ बैठी बालक मुझको भी छोड़ गया, प्रियतम!
उस ओर सत्य ही, रसके उन नियमोंमें बँधा हुआ, प्रियतम!
बालक उन तरुणी-गणके था दृग-पथसे हटा हुआ, प्रियतम॥ ७९९॥

उमड़ी वियोगकी दो सरिता, दो भिन्न दिशाओंसे, प्रियतम!
संगमित हुई पथमें, तटपर बालक था खड़ा वहीं, प्रियतम!
कानोंमें उसके गूँज रही, ध्वनि थी प्रवाहिणीकी, प्रियतम!
हो रहे चित्र हृत्पटपर थे, अङ्कित सब लहरोंके, प्रियतम॥ ८००॥

मोहन-सुजान पद-नीरजको क्षत लग न जाय कोई, प्रियतम!
लेकर इस भयको ही अपने कर्कश उरपर रखतीं, प्रियतम!
रे हाय! हो रही क्या होगी दयनीय दशा उसकी, प्रियतम!
काँटोंसे, पत्थरके कणसे, इस घोर अँधेरेमें, प्रियतम॥ ८०१॥

जैसे प्रतिचित्रित यह लहरी करुणासे सिक्त हुई, प्रियतम!
बालक उनके दृगके आगे हँसकर हो गया खड़ा, प्रियतम!
कोई अर्गला न अब रसके लेने-देनेमें थी, प्रियतम!
अनुभूति उस समयकी उनकी कोई न कह सकेगी, प्रियतम॥ ८०२॥

इसके पश्चात नाचनेका आयोजन बृहत् हुआ, प्रियतम!
छोरी नाची, बालक नाचा, सब-की-सब वे नाचीं, प्रियतम!
उनकी इस नृत्य-कहानीका, अब एक अंशभर है, प्रियतम!
मेरे मानस-पटपर अङ्कित, बाकी मैं भूल गयी' प्रियतम॥ ८०३॥

बाला इतना-सा ही कहकर रुकती, साँवर कहते, प्रियतम!
'तो याद करा दूँ मैं आगे, प्रियतमे! अनुज्ञा है?' प्रियतम!
'क्या करना है, हो रहे श्रमित तुम हो, विश्राम करो' प्रियतम!
उत्तर बालाका यह होता, झपने-से दृग लगते, प्रियतम॥ ८०४॥

मीलित-से होने लग जाते साँवरके लोचन भी, प्रियतम!
दोनोंकी भावमयी समाधि निरुपम लग जाती थी, प्रियतम!
सविकल्प और फिर निर्विकल्प नामोंसे कही हुई, प्रियतम!
सत्ताएँ उसे न छू सकतीं, होती अद्भुत ऐसी, प्रियतम॥ ८०५॥

उसका प्रतिबिम्ब भले वाणी-मन-बुद्धि कहीं छू लें, प्रियतम!
वे तथा सदाके लिये बने तद्रूप निहाल अहो! प्रियतम!
संभव है इतना-सा ही, मैं आगे क्या और कहूँ, प्रियतम!
'हे प्राणाधिक! निहार लेना सागर तुम गागरमें, प्रियतम॥ ८०६॥

जो हो, आगे न सही, बायें मुड़ जाती हूँ अब मैं, प्रियतम!
धारामें सीधे कभी नहीं संतरण सुखद होता, प्रियतम!
दम्पति भी इसी ओर, देखो, आ रहे, भला, वे हैं' प्रियतम!
बालाके दृग खुल गये, पुनः रोना है किन्तु उसे, प्रियतम॥ ८०७॥

आखिर रसभरा स्वप्न यह भी बालाका बदल गया, प्रियतम!
थोड़े होते हैं सुखके दिन, है नियम सदाका ही, प्रियतम!
है बीज दुःख उस सुखका ही, जो नित्य सनातन है, प्रियतम!
पर एक बार तो शूलोंसे छिद गये प्राण उसके, प्रियतम॥ ८०८॥

अष्टम शतक समाप्त

॥ विजयेतां प्रियाप्रियतमश्रीराधामाधवौ ॥

नवम शतक

आया था कोई दूत एक, जो उस राजाका था, प्रियतम!
थे करद-राज्य अगणित जिसके नीचे, डरते रहते, प्रियतम!
वह नृप नृशंस था घोर, कौन जाने क्या कब कर दे, प्रियतम!
कौशलसे ही संतुष्ट उसे करके सब बच पाते, प्रियतम ॥ ८०९ ॥

उस कपटीने मख-उत्सवका आयोजन बृहत् किया, प्रियतम!
उस साँवर बालकको भी था बुलवा भेजा उसने, प्रियतम!
वह दूत महीपालकका था संदेश लिये पहुँचा, प्रियतम!
जब साँझ हो चुकी थी, अशकुन बालाको तभी हुए, प्रियतम ॥ ८१० ॥

मुरझा सहसा वे फूल गये, कुन्तलमें जो लगते, प्रियतम!
अञ्जन जल-सा हो तरल लगा बहने अवनीपर, हे प्रियतम!
सुरभित सब भरे विलेपनसे वे कनकपात्र ढरके, प्रियतम!
नीलमका हार टूटकर वह गिर गया उरस्थलसे, प्रियतम ॥ ८११ ॥

धक-धक कर उठा कलेजा था बालाका देख इसे, प्रियतम!
रोती-सी है बयार वनकी, इतनेमें भान हुआ, प्रियतम!
संध्याकी वह नीरवता भी इङ्गित कर-सी बैठी, प्रियतम!
उस ओर, बात अनचाही जो होनी थी अभी वहाँ, प्रियतम ॥ ८१२ ॥

उपवन-परिसरमें गृहकी थी जो अटा, वहीं वह थी, प्रियतम!
संयोग आज ही था, कोई थी पास न सखी वहाँ, प्रियतम!
अत्यधिक अमंगल सूचक ये बातें कहने उनसे, प्रियतम!
नीचे दौड़ी, दो मिलीं, किंतु अतिशय उदास वे थीं, प्रियतम ॥ ८१३ ॥

छा गया अँधेरा आँखोंके आगे भयसे उसकी, प्रियतम!
क्या हुआ अनिष्ट, हाय! कुछ है प्राणाधिक साँवरका, प्रियतम!
इसलिये मलिन मुद्रा इनकी हो गयी अचानक है, प्रियतम!
यह सोच, थामकर सिर अपना, गिरती-सी बैठ गयी, प्रियतम॥ ८१४॥

लेकर भुज-बन्धनमें उसको, प्रौढ़ा जो थी उनमें, प्रियतम!
कहने कुछ चली, किंतु संभव हो सका न कह देना, प्रियतम!
दो टूक कलेजा बालाका होता-सा दीख पड़ा, प्रियतम!
सुन लेगी, जो वह बात सखी थी छिपा रही उससे, प्रियतम॥ ८१५॥

दोनों सहचरियोंकी आँखें कहती अवश्य कुछ थीं, प्रियतम!
हैं व्यथा लिये गहरी बाला, पर समझ सकी इतना, प्रियतम!
कुम्हलाये नयन-सरोजोंसे थी देख रही उनको, प्रियतम!
दुर-दुर था उर करने लगता, पूछे क्या वह उनसे, प्रियतम॥ ८१६॥

आखिर वह हृदय विदारक जो थी बात सखी मुखसे, प्रियतम!
दृगके उत्तप्त हुए जलसे जल-जलकर निकल पड़ी, प्रियतम!
'साँवर हैं री! जानेवाले इस वनसे दूर वहाँ, प्रियतम!
है क्रूर नराधम नरपति वह विख्यात जहाँ रहता', प्रियतम॥ ८१७॥

यह भावी महाप्रलयकी ही मानो सूचना मिली, प्रियतम!
बाला तो झुलस उठी उसकी लपटोंमें अबसे ही, प्रियतम!
उसकी आँखोंकी पलकोंमें कोई भी गति न रही, प्रियतम!
वे टँगी दे रही-सी पथ थीं, प्राणोंको उड़नेका, प्रियतम॥ ८१८॥

वे प्राण न किंतु उड़े, कैसे उड़ते, अब शक्ति न थी, प्रियतम!
ऊपरसे उनपर दुखका था इतना भारी बोझा, प्रियतम!
जो हिलतक भी न सके तिलभर, पिस-से वे गये वहीं, प्रियतम!
उत्क्राम नहीं, ज्यों-के-त्यों लय होनेका द्वार बचा, प्रियतम॥ ८१९॥

ऐसा ही होने चला, किंतु विधिका विधान यह था, प्रियतम!
वे जलें अनेकों वर्षोंतक, अतएव न हो पाया, प्रियतम!
आ गये तुरन्त वहीं साँवर, फिर देश-काल बदले, प्रियतम!
बीती रजनीकी आठ घड़ी, आयी वह कुञ्जथली, प्रियतम॥ ८२०॥

लेकर उरमें बालाको थे साँवर उदास बैठे, प्रियतम!
आनेपर तनिक चेतना जब उसके दृग-नलिन खुले, प्रियतम!
यह लगा उसे, जगपालककी सीमा न दयाकी है, प्रियतम!
जाकर मेरे जीवनधन फिर जो लौट यहाँ आये, प्रियतम॥ ८२१॥

आधे पलतक वह हर्ष-किरण आँखोंमें भरी रही, प्रियतम!
क्या सत्य किंतु था, साँवरकी मुखमुद्रा कह बैठी, प्रियतम!
बाला उनसे क्या कहती अब, साँवर भी क्या कहते, प्रियतम!
चारों लोचनसे ही जलकी बह चली तप्त धारा, प्रियतम॥ ८२२॥

हो जाती लुप्त चेतना जब रह-रहकर बालाकी, प्रियतम!
साँवरका भी विवेक पूरा कुण्ठित हो जाता था, प्रियतम!
वे तड़प रहे थे रागभरे दो हृदय वेदनासे, प्रियतम!
उनको विवेक शीतल कर दे, यह हुआ, न होगा ही, प्रियतम॥ ८२३॥

बालाके दुःखभरे उरका था तापमान इतना, प्रियतम!
जो अहो! अचेतनता भी थी सह पाती नहीं उसे, प्रियतम!
दो-तीन पलोंमें ही होकर अधजली भाग जाती, प्रियतम!
साँवर निरुपाय उधर आकुल रो रहे निरन्तर थे, प्रियतम॥ ८२४॥

क्रन्दनकी तप्त ऊर्मियोंमें, मूर्च्छाकी छायामें, प्रियतम!
पल-पल बहकर, आगे बढ़कर, रजनी थी बीत रही, प्रियतम!
कैसे लूँ विदा प्रियतमासे, साँवर न समझ पाते, प्रियतम!
जाना तो था ही, पर सब रस जानेका निकल गया, प्रियतम॥ ८२५॥

इतनेमें ही बालामें कुछ परिवर्तन दीख पड़ा, प्रियतम!
वह उठी भावकी लहर, जिसे देखी न किसीने थी, प्रियतम!
'यह इसीलिये तो प्रश्न बना साँवरके जानेका, प्रियतम!
इनको सुख है, इसमें फिर मैं होऊँ विघातिनी क्यों?' प्रियतम॥ ८२६॥

संयत-सी होकर, साँवरकी ग्रीवामें भुजमाला, प्रियतम!
पहनाकर वह बोली-'क्या सच, जा रहे नाथ! तुम हो? प्रियतम!
है हेतु अहो! क्या, कहो मुझे, मैं सम्मति दे दूँगी, प्रियतम!
हूँ नित्य अनादि किंकरी तो इन पद-नलिनोंकी ही' प्रियतम॥ ८२७॥

रुक गया कण्ठ बालाका, बस, कहते-कहते इतना, प्रियतम!
अत्यन्त उधर बेहाल हुए साँवर यह कह पाये, प्रियतम!
'हैं इस तनके कुछ कृत्य वहाँ, प्राणोंकी रानी, हे प्रियतम!
इन पीले पद नखमणिमें ही मन तो है नित्य बसा, प्रियतम॥ ८२८॥

'जाओ प्राणाधिक!'—धीमा यह उत्तरमें स्वर आया, प्रियतम!
केवल इतना-सा ही विनिमय वाणीका हो पाया, प्रियतम!
बाकी सब बातें आँखोंकी उन सजल पुतलियोंने, प्रियतम!
भीगी रोमावलिने कर लीं नीरव उस भाषामें, प्रियतम॥ ८२९॥

था अन्तिम बार उरःस्थलसे उरका जुड़ना कैसा, प्रियतम!
क्या कहूँ चेतना खो दोगे तुम सुनते ही उसको, प्रियतम!
क्यों हो इतिहास अधूरा यह, होगा न उचित यह तो, प्रियतम!
अतएव सुनो आगे जैसे निकले निकुञ्जसे वे, प्रियतम॥ ८३०॥

गलबाँही दिये हुए ही वे अब भी बाहर आये, प्रियतम!
दक्षिणकी ओर चले, फिर उस सरिताको पार किया, प्रियतम!
आया वह थल भी, प्रतिदिन वे लेते थे विदा जहाँ, प्रियतम!
आते ही किंतु वहाँ झिन-झिन लग गये चरण करने, प्रियतम॥ ८३१॥

क्षमता न रही अब बालामें, रह सके आँख खोले, प्रियतम!
वह हटे नील बायें करकी माला, क्यों दृग देखें, प्रियतम!
बारह-दस पलके अन्तरसे उसकी उघरी पलकें, प्रियतम!
साँवर थे दो पद दूर खड़े लोचनमें लोर लिये, प्रियतम॥ ८३२॥

दोनों करसे छाती थामे बाला थी मौन खड़ी, प्रियतम!
उसका सिर किञ्चित् जब हिलता सम्मतिकी मुद्रामें, प्रियतम!
साँवर तब ही रख पाते थे पद एक उस दिशामें, प्रियतम!
थी म्लान उषा यह देख रही, रो रहा वनस्थल था, प्रियतम॥ ८३३॥

साँवर गोपेशपुरीके उस वनमें जब समा गये, प्रियतम!
बाला पगली हो दौड़ चली उनके पीछे-पीछे, प्रियतम!
रोका न उसे सहचरियोंने, वे भी पीछे दौड़ीं, प्रियतम!
वह गिर न पड़े इतना-सा पर उनमें था ध्यान बना, प्रियतम॥ ८३४॥

वनकी कुछ लता उलझती थीं बालाके चरणोंमें, प्रियतम!
उसके तनकी गर्मीसे पर जलने वे लग जातीं, प्रियतम!
इसलिये तुरन्त छोड़ देतीं, उसको पथ मिल जाता, प्रियतम!
दस पलमें वह जा पहुँची घर साँवरकी मैयाके, प्रियतम॥ ८३५॥

भीतर न किंतु जाकर, अड़कर तोरणसे बैठ गयी, प्रियतम!
सबको प्रत्यक्ष दीखती थी उन्मत्त दशा उसकी, प्रियतम!
बिखरे थे केश, ओढ़नी भी गिर गयी खिसककर थी, प्रियतम!
आवरण कञ्चुकीका उरपर केवल था बचा हुआ, प्रियतम॥ ८३६॥

वे किसी भाँति उसके तनको ढक पायीं सहचरियाँ, प्रियतम!
लज्जा क्या अब उसमें रहती, जब तनसुधि ही न रही, प्रियतम!
जल रही आगकी भट्ठी थी कैसी उसके उरमें, प्रियतम!
कैसे थे प्राण बचे फिर भी, यह कह न सकूँगी मैं, प्रियतम॥ ८३७॥

हो चुकी व्यवस्था प्रायः थी कालोचित सब पूरी, प्रियतम!
जानेवाले भी प्रस्तुत थे साँवरके साथ वहाँ, प्रियतम!
गोपेश खड़े थे, सहचर भी शिशु थे तैयार खड़े, प्रियतम!
साँवर एवं उनके अग्रज, इनकी ही देरी थी, प्रियतम॥ ८३८॥

मैया थी सजा रही उनको, पर कर न काम करते, प्रियतम!
वह भूल रही थी रह-रहकर, कैसे क्या है करना, प्रियतम!
गिर जाय न एक बूँद भी जल दृगसे, सतर्क पर थी, प्रियतम!
जानेके समय नीलमणिके क्यों चिह्न अमंगल हो, प्रियतम॥ ८३९॥

जैसे-तैसे सब करके वह साँवरको ले आयी, प्रियतम!
साँवर अग्रजको साथ लिये रथपर भी जा बैठे, प्रियतम!
बाला यह सब थी देख रही, रहकर कुछ दूर खड़ी, प्रियतम!
निस्पन्द पुतरियाँ उसकी थीं प्रस्तर पुतरीकी-सी, प्रियतम॥ ८४०॥

सहसा वह बोल उठी ऊँचे स्वरसे पुकार सबको, प्रियतम!
'भूकम्प हो रहा है, देखो, ये टूट रहे द्रुम हैं, प्रियतम!
दौड़ो, सब दौड़ो, इस रथके पहियेमें घुस जाओ, प्रियतम!
लो थाम इसे, लो बचा इसे, धरती है घूम रही' प्रियतम॥ ८४१॥

उस बड़ी सखीने अंगुलियाँ उसके मुखपर रख दीं, प्रियतम!
पर तबतक तो बालापर ही आ टिकीं आँख सबकी, प्रियतम!
उसकी उस वाणीमें ऐसी थी ऊर्मि वेदनाकी, प्रियतम!
जो एक साथ ही क्षणभर तो सबका धीरज टूटा, प्रियतम॥ ८४२॥

उस विषम परिस्थितिको कातर साँवरकी आँखोंने, प्रियतम!
बालाकी ओर निहार अहो! सर्वत्र सँभाला था, प्रियतम!
उसका सिर अनुमति देता-सा हिल गया तनिक फिरसे, प्रियतम!
चल पड़ा और रथ घड़-घड़कर धीरे-धीरे आगे, प्रियतम॥ ८४३॥

था प्राण छेदनेवाला रव घड़-घड़का रूप धरे, प्रियतम!
जो उनके साथ न जा पायी, उन एक-एकका ही, प्रियतम!
कट-कटकर वे कदली जैसी क्रमशः गिरती जातीं, प्रियतम!
चल पड़ा चक्र अबला-वनमें था क्रूर काल-करिका, प्रियतम॥ ८४४॥

जो काँप-काँपकर किसी तरह उससे कुछ बच पायीं, प्रियतम!
उनको समूल उत्पाटित कर मानो ले साथ चला, प्रियतम!
वह महा भयानक दुखका था जो झञ्झावात उठा, प्रियतम!
बढ़ रहा वेग जिसका था मिल-मिलकर रथकी गतिसे, प्रियतम॥ ८४५॥

बाला उनमें ही थी, उसका तन तो उड़ता ही था, प्रियतम!
उसके माथेमें भी वह था झञ्झाप्रकोप भारी, प्रियतम!
वह रथके पीछे-पीछे अब भागती जा रही थी, प्रियतम!
'हा-हा' कर हँसती, झर-झर थे साँवरके दृग झरते, प्रियतम॥ ८४६॥

आया वह पेड़ उदुम्बरका, पथका था मोड़ जहाँ, प्रियतम!
बङ्किम उस मुद्रामें साँवर रथपर उठ खड़े हुए, प्रियतम!
वह नीली ज्योति सत्य मानो दो-सी हो गयी अहो! प्रियतम!
बालामें एक मिली, लेकर दूजीको रथ भागा, प्रियतम॥ ८४७॥

आधे पलमें ओझल दृगसे रथ हुआ सघन वनमें, प्रियतम!
तत्क्षण फिर अट्टहास गूँजा बालाके श्रीमुखका, प्रियतम!
ऊपर उठ गयीं भुजाएँ, पद गतिशील हुए उसके, प्रियतम!
ऐसे मानो हो गया समय उस रासनृत्यका हो, प्रियतम॥ ८४८॥

'नाचो-नाचो, बहिनों री! तुम, मैं नाच सिखाऊँगी, प्रियतम!
जय हुई प्रीतिकी, जय बोलो, मेरी न, अरी! उनकी' प्रियतम!
इस भाँति अचानक बोल उठी गलने लग गयी धरा, प्रियतम!
वह पास पड़ा पत्थर उसकी ज्वालासे पिघल गया, प्रियतम॥ ८४९॥

आकुल सहचरी सोचती थी, क्या युक्ति करें जिससे, प्रियतम!
इसके जीवनकी अब आगे हो किसी भाँति रक्षा, प्रियतम!
ये प्राण नहीं तो साँवरके सहचर तुरन्त होंगे, प्रियतम!
आच्छन्न और निरवधि होगा यह विश्व अँधेरेसे, प्रियतम॥ ८५०॥

छाती उसकी फटती थी, पर बोली वह बालासे, प्रियतम!
'री बहिन!' चलें वनमें अब तो, हो गयी बड़ी देरी, प्रियतम!
हो सका न सुमन-चयनतक भी, कैसे पूजा होगी, प्रियतम!
साँवर एकाकी खड़े-खड़े होते उदास होंगे' प्रियतम॥ ८५१॥

दृगमें प्रफुल्लता कृत्रिम की मुद्रा लेकर वह थी, प्रियतम!
कृत्रिम उल्लास गिरामें भी उसकी था भरा हुआ, प्रियतम!
यों बार-बार बालाका कर झकझोर रही वह थी, प्रियतम!
जैसे-तैसे उसके मनको दे रही भुलावा थी, प्रियतम॥ ८५२॥

दैवी इच्छासे कुछ पलमें बालाकी वृत्ति फिरी, प्रियतम!
कुछ देर एकटकसे उसने उसके मुखको देखा, प्रियतम!
एवं पहचान उसे बोली—'री! स्वप्न एक मैंने, प्रियतम!
देखा अत्यन्त भयंकर है, ये प्राण काँपते हैं, प्रियतम॥ ८५३॥

क्या होनेवाला है सचमुच वैसा ही अभी यहाँ, प्रियतम!
दुःस्वप्नोंका परिहार अरी! कोई अमोघ कह दे, प्रियतम!
मैं करूँ तुरन्त उसे पहले, वनमें फिर जाऊँगी, प्रियतम!
साँवर हों नित्य सुखी, मेरा जो होना हो सो हो' प्रियतम॥ ८५४॥

इतनेमें रथके पहियोंका दीखा वह चिह्न उसे, प्रियतम!
कृत्रिम फुल्लता सखीकी वह, ठग सकी न अब उसको, प्रियतम!
गम्भीर हुई बाला, उरकी ज्वाला फिर धधक उठी, प्रियतम!
आयी इस बार किंतु बाहर धरकर अभिनव बाना, प्रियतम॥ ८५५॥

बोली वह—'अरी! देख, कौआ कह रहा मुझे कुछ है प्रियतम!
साँवर सुखसे तो पहुँच गये, इतना मैं समझ सकी, प्रियतम!
आगे तू पूछ उसे, क्या वह मर गया दनुजराजा, प्रियतम!
चल पड़े यहाँके लिये तथा साँवर रथपर कि नहीं?' प्रियतम॥ ८५६॥

दृग लगे पुनः पथराने-से उसके इतनेमें ही, प्रियतम!
उसकी यह दशा देख, सखियाँ 'रे हाय' पुकार उठीं, प्रियतम!
इसका परिणाम अवश्य हुआ सुन्दर, जो द्वार मिला, प्रियतम!
आँखोंसे उसके दुखको भी बाहर बह चलनेका, प्रियतम॥ ८५७॥

सहसा वह फूट-फूट करके ऐसी विह्वल रोयी, प्रियतम!
जो एक साथ पशु-पक्षीतक रोने लग गये वहाँ, प्रियतम!
मानो वह कालकूट विष हो भर गया पवनमें ही, प्रियतम!
'चें-चें' कर अहो! लगा खगकुल भद-भद गिरने तरुसे, प्रियतम॥ ८५८॥

नादित उस ओर हुआ क्षणभर वन महा घोर रवसे, प्रियतम!
एवं गिर गये अचेतन हो सब वन्य चतुष्पद भी, प्रियतम!
केवल बालाके, सखियोंके क्रन्दनका रव ही था, प्रियतम!
पूरित उन सभी दिशाओंमें, निस्पन्द बने तरु थे, प्रियतम॥ ८५९॥

वैसे ही रोती हुई चली आगे अब वह वनमें, प्रियतम!
रथके पहियेकी रेखाको पकड़े, रुक-रुक करके, प्रियतम!
जितनी-सी व्यथा वारि बनकर बाहर आ जाती थी, प्रियतम!
मानो उसका अनुपात लिये पदमें गति थी आती, प्रियतम॥ ८६०॥

यद्यपि सहेलियाँ उसको थीं वे सतत सँभाल रही, प्रियतम!
फिर भी कितनी ही बार गिरी खाकर पछाड़ वह तो, प्रियतम!
गाहक जब चला गया तनका, क्यों फिर वह उसे रखे,, प्रियतम!
निष्प्राण-सदृश उसको अब तो सखियोंको ढोना था, प्रियतम॥ ८६१॥

पथ वही न जाने कितना था हो गया आज लंबा, प्रियतम!
आता न अन्त उसका था, वह सरिता न दीखती थी, प्रियतम!
उस रत्नशैलको छू-छूकर बहती वह जिस थलसे, प्रियतम!
बाला जब वहाँ पहुँच पायी, लग रही दुपहरी थी, प्रियतम॥ ८६२॥

इन घड़ियोंमें बालाने था जो करुण विलाप किया, प्रियतम!
कितना वह हृदय विदारक था, क्या सखियोंपर बीती, प्रियतम!
बाला एवं उनमें फिर थे जो-जो संवाद हुए, प्रियतम!
इसको सुनकर फिर तुम आगे क्या और सुन सकोगे? प्रियतम॥ ८६३॥

अतएव न वह कहकर, नीली कल-कल निनादिनीकी, प्रियतम!
लहरोंमें जैसे अवगाहन बालाने किया कहूँ, प्रियतम!
आकर उस तटपर खड़ी हुई जिसपर गिरिवर अपना, प्रियतम!
धो रहा चरण था, बालाने अपनी अञ्जलि भर ली, प्रियतम॥ ८६४॥

मस्तकपर वारि बिखेर, अहो! बोली वह सरितासे, प्रियतम!
"री बहिन! आज मैं आयी हूँ तेरे समीप रोने, प्रियतम!
देगी तू मुझे उरस्थलकी किञ्चित् शीतलता क्या? प्रियतम!
जल रहे प्राण-तन हैं मेरे, क्षणभर शीतल ये हों, प्रियतम॥ ८६५॥

मैंने तेरा अपराध किया, मैं गर्व भरी तब थी, प्रियतम!
साँवरको नित्य साथ पाकर फिरती इठलाती थी, प्रियतम!
अधिकार नील तनपर करके मेरी मति बौरायी, प्रियतम!
कितनी ही बार तुझे पदसे मैंने ठुकराया है, प्रियतम॥ ८६६॥

नीला श्रीमुख दृगमें रखकर तेरी परवाह न की, प्रियतम!
नीला कर अहो! कण्ठमें था, गिनती न तुझे मैं थी, प्रियतम!
नीले तन-सौरभसे माती आयी न पास तेरे, प्रियतम!
नीले तरुपर समुदित फलका रस पी न मिली तुझसे, प्रियतम॥ ८६७॥

नीले मुखका मधु रव सुनती, कल-कल न सुना तेरा, प्रियतम!
नीला था अङ्क मिला, तेरी गोदी न सुहाती थी, प्रियतम!
नीले कर सेते थे पदको, सेवा न रुची तेरी, प्रियतम!
नीली वह अलकावलि हरती श्रमकण, भूली तुझको, प्रियतम॥ ८६८॥

मेरी निधि वह छिन गयी किंतु, हूँ अब भिखारिणी मैं, प्रियतम!
जो सत्य महारानी कल थी इन सब निकुञ्ज वनकी, प्रियतम!
मेरा सब गर्व चूर होकर, हूँ बनी आज दीना, प्रियतम!
सोने अब आयी हूँ तेरी शीतल गोदीमें ही, प्रियतम॥ ८६९॥

तू मुझे निराश नहीं करना, तू मुझे न ठुकराना, प्रियतम!
मुझसे जो हुआ अनादर है, उसको बिसार देना, प्रियतम!
अपनी अप्रतिम शीलतासे, निस्सीम अनुग्रहसे, प्रियतम!
तू ठौर मुझे देना अपने नीले, शीतल उरमें, प्रियतम॥ ८७०॥

सोनेसे पहले कुछ बातें, मैं और तुझे कह दूँ, प्रियतम!
तू दयामयी है कर देना मेरी यह सेवा भी, प्रियतम!
मुझसे हों अलग भले साँवर, वे तुझे न छोड़ेंगे, प्रियतम!
तू तो है, बहिन! वहाँ भी, वे अब जिस नगरीमें हैं, प्रियतम॥ ८७१॥

आयेंगे वे अवश्य तेरे रससे शीतल होने, प्रियतम!
उनके पदपद्मोंकी रजसे भूषित मैं हो न सकी, प्रियतम!
मेरी यह अभिलाषा पूरी अब तू ही कर देना, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, उनके पद धो देना, प्रियतम॥ ८७२॥

कुछ गुप्त हेतुओंसे वह सुख उनको मैं दे न सकी, प्रियतम!
वे अहो! तरसते चले गये, होकर निराश मुझसे, प्रियतम!
पूरी उमंग देकर उनको ले सकी न मैं उरमें, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, तू वह सुख दे देना, प्रियतम॥ ८७३॥

रह गयी सोचती ही मैं तो, उनका अभिषेक करूँ, प्रियतम!
आखिर वे चले गये, अवसर यह किंतु नहीं आया, प्रियतम!
झूलेगी मुखपर कृष्ण-कुटिल अलकावलि वैसी ही, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, तू उसे सिक्त करना, प्रियतम॥ ८७४॥

लोलुप वे सदा बने रहते मेरे मुख-सौरभके, प्रियतम!
उस ओर सदा घेरे रहती अतिशय लज्जा मुझको, प्रियतम!
उनका न मनोरथ वह पूरा कर सकी आजतक मैं, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, तू ही अब यह करना, प्रियतम॥ ८७५॥

सोने लगती निकुञ्जमें जब, उनकी इच्छा होती, प्रियतम!
ऐसा कोई मैं चित्र लिखूँ जो नित्य नवीन बने, प्रियतम!
उनका मुख था ऐसा ही, मैं उरपर लिख भी देती, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, तू उसे दिखा देना, प्रियतम॥ ८७६॥

'सुस्पर्श अप्रतिम है क्या?' वे मुझसे पूछा करते, प्रियतम!
उनके अङ्गोंका ही अनुभव मुझको तो होता था, प्रियतम!
वाणी तो नहीं, चपलता यह तनकी कह देती थी, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, तू भी बतला देना, प्रियतम॥ ८७७॥

रजनीके समय सदा वे थे करते विनोद मुझसे, प्रियतम!
'वल्लभे! कहो तुम गाती क्या, यह गीत वंशिका है?' प्रियतम!
मैं कहती—'शिव हरि मार बिन्दु मम नाम सम्पुटित है' प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, तू कल-कलमें कहना, प्रियतम॥ ८७८॥

प्रति रजनीमें था प्रश्न और उत्तर अवश्य होता, प्रियतम!
केवल भाषा बदली रहती है, 'चित्-पीयूष कहाँ?' प्रियतम!
'दो अरुण नवल पल्लवमें ही', तू भी यों ही कहना, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, तू यह सेवा करना, प्रियतम॥ ८७९॥

मेरे उरपर कर-किसलयसे कर्पूर-विलेपन वे, प्रियतम!
देने लगते, उनकी आँखें झर-झर झरने लगतीं, प्रियतम!
मैं व्यस्त पोंछती जाती थी, तू भी ऐसे करना, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, अपने समीर-करसे, प्रियतम॥ ८८०॥

प्रातःकी बेलामें मेरी आँखोंमें वे आते, प्रियतम!
गो दुहते-से होकर, पलकें उनको ढक लेती थीं, प्रियतम!
गोकुल परितृप्त बने, तबतक तू भी उनको ढकना, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, तटके द्रुमजालोंसे, प्रियतम॥ ८८१॥

दिनके दूसरे पहरमें वे रहते अरण्यमें थे, प्रियतम!
मेरा प्यारा भाई मेरी करता सहायता था, प्रियतम!
प्रेषित मैं एक पत्र करती, तू भी अवश्य करना, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, नलिनोंपर लिख करके, प्रियतम॥ ८८२॥

होती अर्चना दिवाकरकी अपराह्णकालमें थी, प्रियतम!
मेरी आशा वल्लरी हरी क्रमशः होने लगती, प्रियतम!
मैं अर्घ्य तरणिको देती थी, तू भी अवश्य देना प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, लहरें उछाल करके, प्रियतम॥ ८८३॥

संध्याके समय दीखते वे काननसे घर आते, प्रियतम!
मेरे समीप आते ही वे कन्दुक उछाल देते, प्रियतम!
अञ्जलिमें उसे पकड़ लेती मैं, तू भी यों करके, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, उनको प्रसन्न करना, प्रियतम॥ ८८४॥

होता प्रदोषमें अनुभव, वे मुझको हैं ढूँढ़ रहे, प्रियतम!
नीली या उजली साड़ी मैं तत्काल पहर लेती, प्रियतम!
संकेत जोहती उनका फिर, तू भी ऐसा करना, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, उनको न खिन्न करना, प्रियतम॥ ८८५॥

मिलना होता निशीथमें, वे उस समय भूल जाते, प्रियतम!
अपना स्वरूप, कहने लगते, 'मैं रमणी हूँ, रमणी!' प्रियतम!
मैं चेत कराती थी उनको, तू भी सतर्क रहना, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, उनको सँभाल लेना, प्रियतम॥ ८८६॥

उस अपर-रात्रमें भावोंकी आँधी आ जाती थी, प्रियतम!
जिसके प्रवाहमें मन उड़ता अत्यन्त दूर उनका, प्रियतम!
मैं साथ-साथ उड़ चलती थी, तू भी यों उड़ चलना, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, उनको रसमें भरना, प्रियतम॥ ८८७॥
लगते ही उषा, परस्परकी पूजा चलने लगती, प्रियतम!
होता स्वरूप-विनिमय पूरा, प्राणोंका, तनका भी, प्रियतम!
क्षणमें फिर पहले-सा बनता, तू भी बन-बनकर यों, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, यह सेवा भी करना, प्रियतम॥ ८८८॥

सुन्दरी एक-से-एक बड़ी उनमें अनुरागवती, प्रियतम!
इस वनमें बसती थीं अपना सर्वस्व दिये उनको, प्रियतम!
मैं सबको अहो ! मिलाती थी, तू भी व्रत ले लेना, प्रियतम!
मेरे प्राणोंमें प्राण मिला, साँवर-सुख-वर्धनका, प्रियतम॥ ८८९॥

इतना सब कहनेका केवल उद्देश्य बहिन! यह है, प्रियतम!
जो सेवा मैं कर सकी नहीं, जो प्रतिदिन करती थी, प्रियतम!
उन सबका भार एक तुझपर हूँ डाल रही अब मैं, प्रियतम!
तू भला अनन्त कालतक यह कर्तव्य निभा देना प्रियतम॥ ८९०॥

तुझसे मैं नित्य एक रहकर यह सब देखूँगी ही, प्रियतम!
तू किंतु न यह उनको कहना, हूँ मिली हुई तुझमें, प्रियतम!
होंगे संकुचित नाथ मेरी प्रच्छन्न उपस्थितिसे, प्रियतम!
तू सावधान रहना हरदम, लगने न गन्ध देना, प्रियतम॥ ८९१॥

सबको वे वहाँ विराजित कर करुणासे भरी हुई, प्रियतम!
बोलीं—'धीरज! धीरज! मेरी पुत्रियों रखो, देखो! प्रियतम!
इस महादुःखकी रजनीका होकर अवसान, उषा, प्रियतम!
आयेगी, साँवरसे मिलकर सुखिनी तुम सब होगी' प्रियतम॥ ९०४॥

वे अम्बा इतना ही कहकर अन्तर्हित हुईं तथा, प्रियतम!
रत्नावासोंसे भरा हुआ वह गाँव अदृश्य हुआ, प्रियतम!
उसके वन-परिसरपर भी कुछ अभिनव माया फैली, प्रियतम!
उसकी सत्ता होती न वहाँ उपलब्ध सभीको थी, प्रियतम॥ ९०५॥

बालाको, उसकी सखियोंको मानो सब भूल गये, प्रियतम!
थीं कौन, कहाँ बसती वे, थे माँ-बाप कौन उनके, प्रियतम!
दैनन्दिन जीवन था उनका क्या, कहाँ गयीं अब वे, प्रियतम!
आवरण सभी इन बातोंपर, आया सबके मनमें, प्रियतम॥ ९०६॥

अज्ञात सभीको थी घटना, विरजाकी धाराकी, प्रियतम!
उस महाभावकी क्रीडाका इतिहास अप्रकट था, प्रियतम!
आकुल फिर वनवासी जन थे साँवरके जानेसे, प्रियतम!
यह तो विधान ही था विधिका, अतएव हुआ ऐसा, प्रियतम॥ ९०७॥

था चारों ओर अँधेरा ही, यद्यपि सित रजनी थी, प्रियतम!
यों चार पहरके अन्तरसे उग आये दिनकर भी, प्रियतम!
वे, किन्तु निरन्तर मुँदी हुई बालाकी आँखें थीं, प्रियतम!
काली थी उसके लिये निशा अब सौ वर्षोंवाली, प्रियतम॥ ९०८॥

कैसे, प्राणाधिक कहूँ अहो! उन करुण चरित्रोंको, प्रियतम!
आगेके, प्राणोंमें पल-पल चल रही टीस अब है, प्रियतम!
थोड़ा-सा फिर भी कहना है, तुम चाह रहे जो हो, प्रियतम!
ले प्यार नित्य तुमसे ही तो, देती हूँ मैं तुमको, प्रियतम॥ ९०९॥

नवम शतक समाप्त

॥ विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ॥

दशम शतक

वह उजड़ गया वन था, जिसमें बहती रसकी धारा, प्रियतम!
था हा-हाकार भरा उसमें असहाय अनाथोंका प्रियतम!
ज्वालामय पवन बना रहता जलते प्राणोंको छू, प्रियतम!
वे अटके थे, बस, आशापर आनेकी साँवरके, प्रियतम ॥ ९१० ॥

रञ्जित तमोलसे ओठ न थे, चितवन अब वक्र न थी, प्रियतम!
घुँघराले कचकी लहर न थी, बल खाती वेणीकी, प्रियतम!
झनकार न थी आभूषणकी, वीणा जैसे स्वरकी, प्रियतम!
नीले-पीले परिधानोंकी थी ज्योति न अब वनमें, प्रियतम ॥ ९११ ॥

अब सिरिस-कुसुम सुकुमार अङ्ग थे नहीं प्रभावाले प्रियतम!
था अस्थि मात्र मानो लिपटा धूमीले वस्त्रोंसे प्रियतम!
पतला-सा सोता आँखोंसे हरदम चलता रहता, प्रियतम!
मुरछासे वेग कभी उसका थमता, फिर बढ़ जाता, प्रियतम ॥ ९१२ ॥

थे बने विहङ्गम मूक, गीत गाती न कोकिला थी, प्रियतम!
शुक था नीरव रहता, सारी पढ़ती न पाठ अब थी, प्रियतम!
'मिल लो गोपी तुम', एक नहीं रटता पिरोइयाँ था, प्रियतम!
मधुलिह भी भूल गया अब था उड़ना गुन-गुन करना, प्रियतम ॥ ९१३ ॥

सब सूख गयी थीं वल्लरियाँ, पादपकी शाखाएँ, प्रियतम!
मुण्डित योगी-सा वट विरहित पत्रोंसे था रोता, प्रियतम!
'साँवर आते प्रतिदिन पहले मेरी ही छायामें, प्रियतम!
फिर आ उनसे बाला मिलती'—यह बात याद करके, प्रियतम ॥ ९१४ ॥

सूनी उदास बैठी रहती गिरिवरकी दरी वहाँ, प्रियतम!
कमलोंकी सूखी शय्यापर आँखें अपनी डाले, प्रियतम!
आकर साँवरने एक रात बालाको साथ लिये, प्रियतम!
विश्राम किया था इसपर ही, इस चिन्तामें डूबी, प्रियतम॥ ११५॥

थे ऊर्मिहीन सर सब वनके, हिम-सा था हृदय जमा, प्रियतम!
गहरा था दुःख भरा उनमें, उस सुखके खोनेका, प्रियतम!
'साँवर आये थे मेरा रस अपनी अञ्जलिमें ले, प्रियतम!
आधा बालाके मुखमें भर, पी गये शेष फिर वे' प्रियतम॥ ११६॥

चलता रवि तप्त हुआ धीरे, साँवरके बिना उसे, प्रियतम!
बालाके द्वारा अर्घ्यदान करवाकर कौन कहे, प्रियतम!
'इनके निमित्त मैं पा तुमको, हूँ ऋणी सदा इनका, प्रियतम!
संकल्प अतः है, पूजित हों चिर काल सभीसे ये,' प्रियतम॥ ११७॥

था योग, अहो! मयंकने ही आदर पाकर उससे, प्रियतम!
साँवरको ब्रह्मनिशातक सित किरणोंसे सिक्त किया, प्रियतम!
अब वनमें उसकी ओर किंतु बाला न देखती थी, प्रियतम!
उठती थी आह अतः उरमें, ठंडापन था न रहा, प्रियतम॥ ११८॥

'बड़भागी जगत-प्राण यह है, बालाके अङ्गोंके, प्रियतम!
भीतर-बाहरका छू सौरभ'—कहकर साँवर हँसते, प्रियतम!
वह रसिक न था, अब फूल न थे, बाला तनपर, वनमें, प्रियतम!
बहता, सुवाससे रहित अतः, होकर वह वैरागी, प्रियतम॥ ११९॥

साँवर कहते कुछ बालासे, भरते रव मुरलीमें, प्रियतम!
मेरे गुणका था अर्थ तभी, सत्ताका इस वनमें, प्रियतम!
पर कहाँ गयी ध्वनि अब वह, कुछ था समझ नहीं पाता, प्रियतम!
इसलिये व्योम चिन्तित-असङ्ग, केवल 'हा-हा' करता, प्रियतम॥ १२०॥

जो उस अरण्यके अधिवासी, उद्भिज्ज, जरायुज या, प्रियतम!
प्राणी अण्डज थे, उन सबका मन था न रहा तनमें, प्रियतम!
उड़कर साँवरके मुखपर था मँडराता चला गया, प्रियतम!
थी छाँह बची केवल उसकी रोनेके लिये वहाँ, प्रियतम॥ ९२१॥

क्या है कैसा सम्मुख अनुभव, बाहरका दूर रहे, प्रियतम!
होता न किसीको भान वहाँ अपनेपनका भी था, प्रियतम!
संसार मिटा, व्यवहार गया, जीवनका चिह्न बचा, प्रियतम!
उनमें जो आह, अश्रुधारा निःसृत होती रहती, प्रियतम॥ ९२२॥

कैसे लिख दूँ उन चित्रोंको वाणीकी तूलीसे, प्रियतम!
लिखने बैठी वह, किंतु नहीं चलती इससे आगे, प्रियतम!
काननके कण-कणमें जो है, वह दुःखभरी जड़िमा, प्रियतम!
प्राणोंमें लगी पुनः भरने, कहनेसे दृग-तनमें, प्रियतम॥ ९२३॥

जो कहीं ठहर जाऊँ किञ्चित्, लेकर मनमें इसको, प्रियतम!
होगी फिर तो इति अभी यहीं, बालाकी गाथाकी, प्रियतम!
रह जायें अहो! फिर सुन्दरतम बातें आगेकी वे, प्रियतम!
रोये यह देश, नगर, जिसमें घर था कच्चा उसका, प्रियतम॥ ९२४॥

अतएव तनिक वनसे हटकर, परदेसीकी* चर्चा, प्रियतम!
करती हूँ, जो था साँवरका वह दूत नवीन बना, प्रियतम!
सुन्दर था श्याम रंग उसका, भूषित था साँवर-सा, प्रियतम!
कुछ बात वहाँ कहने-करने बालासे था आया, प्रियतम॥ ९२५॥

प्रेरित हो प्रेरकसे उरके, कोई बोली दीना, प्रियतम!
'आया क्या वही पुनः, जो था साँवरको ले भागा?' प्रियतम!
स्वर करुण कण्ठसे ज्यों निकला, वनमें वह गूँज उठा, प्रियतम!
फिर एक साथ सबकी आँखें खुल गयी अचानक थीं, प्रियतम॥ ९२६॥

वे लगीं देखने उस पथको, साँवर थे जिधर गये, प्रियतम!
था समय वही प्रातःका ही, वे विदा हुए जब थे, प्रियतम!
उनके समक्ष था एक खड़ा कोई प्रणाम करके, प्रियतम!
चुपचाप हाथ जोड़े, मानो गूँगा हो सत्य अहो! प्रियतम॥ १२७॥

वे देख रही उसको थीं, वह उनको था देख रहा, प्रियतम!
कुछ बोल नहीं पाता वह था, दुखकी दाझी वे थीं, प्रियतम!
जब चार घड़ी थी बीत चुकी, इस भाँति कहा उसने, प्रियतम!
'साँवरका हूँ मैं मित्र, मुझे भेजा उनने ही है' प्रियतम॥ १२८॥

जैसे स्वरमें सम बँधे हुए तन्त्रोंके तारोंको, प्रियतम!
अर्भक ले छेड़ चपल, सहसा झंकृत होते वे हैं, प्रियतम!
वैसे ही 'साँवर' नाम बना, उनके श्रवणोंमें जा, प्रियतम!
उद्‌बुद्ध रागिणी भावोंकी, करनेमें हेतु बना, प्रियतम॥ १२९॥

कितना सम्मान मिला उनसे साँवरके सहचरको, प्रियतम!
अन्तस्तलसे उनके निकला था स्नेह उत्स कैसा, प्रियतम!
अभिषेक हुआ जिससे उसका, है उचित नहीं कहना, प्रियतम!
प्राणोंमें झाँक देख लेना वह खेल पुनः अपना, प्रियतम॥ १३०॥

सुनना कुछ चाह रहे हो पर, फिरसे जब मुझसे ही, प्रियतम!
इतिवृत्त महा है गोपनीय, किञ्चित् तथापि कह दूँ, प्रियतम!
दीपककी लौ-सी है रसकी गति, जो मिट जाती है, प्रियतम!
हिलने लगती है या, बाहर आकर समीरको छू, प्रियतम॥ १३१॥

जो हो, विलापके शुचि जलसे पद धुले दूतके थे, प्रियतम!
दौड़ी फिर अर्घ्य लिये वह थी मूर्च्छा उनकी दासी, प्रियतम!
आनेपर होश सिसकियोंने आचमन कराया था, प्रियतम!
विधि रचित वारि-आसनसे फिर हो सका समर्हण था, प्रियतम॥ १३२॥

विस्फरित आँखोंसे बैठा वह दूत विमूढ़ हुआ, प्रियतम!
था देख रहा, वे सब उसकी करती प्रदक्षिणा थीं, प्रियतम!
दो घड़ी पुनः जब बीत गयी अद्भुत इस अर्चामें, प्रियतम!
थी प्रश्न कुशलका करने वह, आ सकी गिरा खिन्ना, प्रियतम॥ ९३३॥

क्रमशः उमड़ा फिर भाव, लगीं सब वे कहने चरसे, प्रियतम!
साँवर काननमें थे कैसे रहते, क्या-क्या करते, प्रियतम!
साधारण-से-साधारण भी अतिशय नगण्य-सी थी, प्रियतम!
साँवरकी दिनचर्याकी जो घटना कहकर रोती, प्रियतम॥ ९३४॥

सुनकर सब बात दुःख उनका हरने वह दूत चला, प्रियतम!
खुल गयी ज्ञानकी पेटी वह साँवरने जो दी थी, प्रियतम!
सुन्दर सुबोध नव शैलीसे साँवरकी व्यापकता, प्रियतम!
प्रतिपादन कर उनसे उनकी वह उक्ति कही उसने, प्रियतम॥ ९३५॥

'मन रमा रहे तुम सबका ही केवल जिससे मुझमें, प्रियतम!
होकर नयनोंका तारा, मैं हूँ दूर बसा तुमसे' प्रियतम!
सुनते ही लोचन बन्द हुए कमलों-से उन सबके, प्रियतम!
आवेश एक उनमें आया अप्रतिम दिव्य सहसा, प्रियतम॥ ९३६॥

बाला उनसे घिरकर बैठी भावोंमें थी डूबी, प्रियतम!
आया है एक दूत, केवल इतना थी जान सकी, प्रियतम!
आँखें न खुलीं, न हिली वह थी, अबतक इन बातोंको, प्रियतम!
कितना सुन पायी, सुन न सकी अथवा, यह कौन कहे, प्रियतम॥ ९३७॥

सत्कृत अतुलित था दूत हुआ उसकी सखियोंसे ही, प्रियतम!
बालाकी सन्निधिमें ही पर सब बात हुई यह थी, प्रियतम!
वह था तड़ागका तीर अमल, जिसपर थी जुड़ी सभा, प्रियतम!
उत्तरकी ओर किये मुख थीं, बाला एवं सब वे, प्रियतम॥ ९३८॥

मुँह फेर दूतसे मान-राग-पूरित हो सहचरियाँ, प्रियतम!
मानो विस्मृत करके यह भी, है पुरुष यहाँ श्रोता, प्रियतम!
कुछ बात लगीं अपनी-अपनी बालासे बतलाने, प्रियतम!
साँवरके साथ हुई उनकी जो कुञ्ज निभृतमें थीं, प्रियतम॥ ९३९॥

जब एक बोलकर पगली-सी हँसती या रो देती, प्रियतम!
हँसना-रोना उसका थमता, कहती थी अन्य तभी, प्रियतम!
जैसे कोई भीतरसे सच कहवाता हो उनसे, प्रियतम!
यों एक-एककर सब-की-सब बोली जो थीं सुन लो, प्रियतम॥ ९४०॥

ललितायाः उक्तिः—
साँवर अब भूल गये हैं री! वह बात पानवाली, प्रियतम!
तू अर्ध दाँतसे कर, मेरे अधरोंपर रख बैठी, प्रियतम!
पीछेसे आये, झटक लिया, खा गये और बोले, प्रियतम!
'हो गया क्रीत मैं नित्य दास, इस हिस्सेके बदले' प्रियतम॥
अहो! पश्य अस्माकं दुर्दैवं सम्प्रति क्रीतदासोऽपि निजस्वामिनीं प्रति ईदृशः ज्ञानसंदेशप्रेषको भवति इत्युक्त्वा उन्मत्तेव हसति। ॥ ९४१॥

विशाखायाः उक्तिः—
क्यों याद करें साँवर, परिवा भादों कृष्णाकी थी, प्रियतम!
थी केश सँवार रही तेरे, छिपकर वे कह भागे, प्रियतम!
'जिनके कच हैं, करती जो है रचना, वे नित्य बसें, प्रियतम!
मेरे उरमें, निर्बाध करूँ उनके पदकी सेवा' प्रियतम॥
अहो! क्व तु ईदृशी प्राणोत्थलालसा क्व चेदानीं ईदृशी स्वरूप-स्थित्यहंकृतिः इत्युदीर्य उच्चस्वरेण क्रन्दनम्। ॥ ९४२॥

चित्रायाः उक्तिः—
अब समझ गयीं, साँवर कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं, प्रियतम!
तुझसे प्रेषित दिनमें थी री! मैं मिली, कहा उनने, प्रियतम!
'परिशोध नहीं तुम दोनोंके ऋणका कर पाऊँगा, प्रियतम!
जैसे कह दोगी, जीवन भर, करके, संतोष करूँ' प्रियतम॥
जयतु वञ्चकशिरोमणिः नन्दनन्दनः इति निगद्य उन्मत्तेव अट्टहासं करोति॥ ९४३॥

इन्दुलेखायाः उक्तिः—
थी रात अँधेरी, साँवर थे अञ्चलसे उलझे-से, प्रियतम!
लज्जामें डूबी, बचन बद्ध तुझसे, पर मैं चुप थी, प्रियतम!
पड़कर चरणोंमें स्वीकृति वे मेरी थे चाह रहे, प्रियतम!
थी सन्धि हुई जिन शर्तोंपर, हैं जला रही अब वे, प्रियतम॥ ९४४॥

चम्पकलतायाः उक्तिः—
'भौंरा है', 'नहीं-नहीं, भौंरी', वह वाग्युद्ध-सा था, प्रियतम!
वे हार गये, मैं जीत गयी, तू ही थी पंच बनी, प्रियतम!
बन्धन वह अहो! कुन्तलोंसे, हाथोंका कैसा था, प्रियतम!
क्या आशा थी सपनेमें भी, इतने झूठे वे हैं? प्रियतम॥ ९४५॥

रंगदेव्याः उक्ति—
हेमन्त निशा थी बीत चुकी, षष्ठी कृष्णा पहली, प्रियतम!
री! मैं सपनेमें देवीकी कर रही अर्चना थी, प्रियतम!
उस समय चपल हो बोले वे 'हूँ नित्य बँधा मैं तो' प्रियतम!
तत्क्षण मैं जगी, उक्ति सच थी, पर अब सब सपनेकी, प्रियतम॥ ९४६॥

तुङ्गविद्यायाः उक्तिः—
ऋतुराज-शिशिरकी सन्धि हुई दो दिन पहले ही थी, प्रियतम!
मैं खड़ी अटारीपर थी, रवि थे क्षितिज छू रहे-से, प्रियतम!
री! तू जाने, भ्रम हुआ मुझे या सत्य पधारे वे, प्रियतम!
उनका दुकूल बन्धक रखना, पर अर्थ हीन अब है, प्रियतम॥ ९४७॥

सुदेव्याः उक्तिः—

दुपहरी ग्रीष्मकी तपती थी , मेरा उर था तपता, प्रियतम!
तेरे प्रति री! लखकर उनकी सुस्पष्ट वंचनाएँ, प्रियतम!
चन्दन-विलेप देकर वे थे हर रहे ताप तेरा, प्रियतम!
उस ताल-वृन्तपरके अक्षर, उनके मिथ्या सब हैं' प्रियतम॥ ९४८॥

मञ्जुश्यामाः उक्तिः—

री बहिन! अङ्कसे तेरे थी लगकर सोयी जैसे, प्रियतम!
कैसे क्या, था सब हुआ, उसे तू याद तनिक कर ले, प्रियतम!
तबसे हूँ देख रही, मेरे उरमें हरदम तू है, प्रियतम!
हैं नित्य बसे फिर वे तुझमें, रोती तथापि मैं हूँ, प्रियतम॥

भगिनि! ममेयं भ्रान्तिः अथवा सत्यानुभूतिः इति न ज्ञायते त्वं तु यदा रोदिषि तर्हि अस्माकं प्रियतमः प्राणाधिकः प्राणेश्वरः प्राणवल्लभः नित्यनवनिकुञ्जेश्वरः नित्यवृन्दावनेश्वरः नन्दनन्दनः सम्प्रति मधुपुर्यामेव वसति इति निश्चीयते इति भगिनीं संबोध्य भगिन्याः अङ्के शिरः निधाय फूत्कारपूर्वकं क्रन्दनम्॥ ९४९॥

मधुमत्याः उक्तिः—

नीरस मेरा स्वर था, अब भी नीरस यह तो है ही, प्रियतम!
री! पड़ती थी मधुमय तेरे स्वरकी इसपर छाया, प्रियतम!
थे बिके सदाके लिये अतः वे मेरे हाथ भला, प्रियतम!
क्यों चले गये बहका मुझको, इसको वे ही जानें, प्रियतम॥ ९५०॥

विमलायाः उक्तिः—

मेरा गोरापन था प्यारा इतना कि एक दिन तो, प्रियतम!
वे खो बैठे स्व-स्मृतितक भी, मुझको निहारते ही, प्रियतम!
छुटा न रंग मेरे तनका, मनका पर वे बदले, प्रियतम!
अपना ही साथ न देता है प्रतिबिम्ब अँधेरेमें, प्रियतम॥ ९५१॥

श्यामलायाः उक्तिः—

था छिपा कलंकी शशि काले बादलकी ओट लिये, प्रियतम!
शङ्कित हो गृह-फुलवारीमें मैं बाट जोहती थी, प्रियतम!
तेरी ही री! सहचरी बनी अभिसारकारयित्रि, प्रियतम!
अर्पण युग कुड्मल करनेका, था मिलना लाभ यही, प्रियतम॥ ९५२॥

पालिकायाः उक्तिः—

थी नील वारिधरने ही यह यौवन-वल्ली सींची, प्रियतम!
जब फूल लगे, सौरभ आया इसमें, तब चला गया, प्रियतम!
बोली थी यह—'ठगना मत', तब उसने था कहा—'भला, प्रियतम!
संबन्ध टूटता है क्या, जो प्राणोंका होता है?' प्रियतम॥ ९५३॥

भद्रायाः उक्तिः—

आँखें झप जाती थीं मेरी, मिलना वह था पहला, प्रियतम!
नीली किरणोंका स्वागत कर पायी जैसे-तैसे, प्रियतम!
उनका था शील कि मेरा री! विश्वास कर सकी जो, प्रियतम!
भादों सित तेरसकी छट्ठी-पूजनकी पद्धतिमें, प्रियतम॥ ९५४॥

धन्यायाः उक्तिः—

कितने युग तबसे बीत गये, कम्पन है वैसा ही, प्रियतम!
मेरे कर-पदमें सृष्ट हुआ जो उनके छूनेसे, प्रियतम!
उल्लास एक था, किञ्चित् सुख दे सकी कभी तुझको, प्रियतम!
वह मिटा, बात धोखा थी ही, पूनो चैती निशिकी, प्रियतम॥ ९५५॥

तारिकायाः उक्तिः—

उस दिन ऐसी तन्मयता थी मेरे प्रति बढ़ी हुई, प्रियतम!
जो मेरी साँस चित्र उनके उरमें लिख देती थी, प्रियतम!
जब हुआ ज्ञान-रविसे ब्रजका भावित शशि नीला भी, प्रियतम!
तारककी आभामें तब है क्या भरी वही शोभा, प्रियतम॥ ९५६॥

रूपमञ्जर्याः उक्तिः—

‘लावण्य अरी! त्रिभुवनमें है अप्रतिम नित्य तेरा, प्रियतम!
हो रहा अनादि कालसे हूँ न्योछावर इसपर मैं’ प्रियतम!
है उक्ति निरर्थक उनकी यह, भादों सित परिवाकी, प्रियतम!
विश्वास करूँ किसका, कपटी जब हुए कुञ्ज-राजा, प्रियतम॥ ९५७॥

लवङ्गमञ्जर्याः उक्तिः—

लगते वसन्तकी, रजनी थी अँधियारी नवमीकी, प्रियतम!
तेरे समीप उनको लेकर केवल मैं पहुँच सकी, प्रियतम!
किसका मुख-सौरभ वासित है करता निकुञ्जथलको, प्रियतम!
उनके उस रसमय कौतुकका, है पर्यवसान यहाँ, प्रियतम॥ ९५८॥

चन्दनमञ्जर्याः उक्तिः—

है पारिजात सुरभित या ये तेरी कुञ्चित अलकें, प्रियतम!
निर्णय जैसे जो हुआ, उसे तू एक जानती है, प्रियतम!
पड़ गयी भुलावेमें, तेरी ममतासे दबी हुई, प्रियतम!
क्या पता मुझे था, उनकी यह झूठी अधीनता थी, प्रियतम॥ ९५९॥

कर्पूरमञ्जर्याः उक्तिः—

देकर उरका कण-कण, उनकी मैंने रुचि थी रख दी, प्रियतम!
आषाढी दूज असितका दिन, कैसे मैं भूलूँगी, प्रियतम!
‘इस भाँति नित्य तेरे प्रति भी, मैं नेह निभाऊँगा’ प्रियतम!
आशा यह जिसने दी थी, दी उसने ही तोड़ उसे, प्रियतम॥ ९६०॥

रतिमञ्जर्याः उक्तिः—

आमोंमें बौर लगा था, वे मुझसे थे पूछ रहे, प्रियतम! ‘अर्चनकी
विधि’, मैं क्या उत्तर इसका देती उनको, प्रियतम!
मेरी वह किंतु मौन मुद्रा, बन गयी धरोहर थी, प्रियतम!
उनकी ही वाणीमें, पर अब समझी, वह चकमा था, प्रियतम॥ ९६१॥

गुणमञ्जर्याः उक्तिः—

विजयादशमी थी, उनकी भी जय हुई अनोखी थी, प्रियतम!
हारे-ही-हारे नित्य अरी! तुझसे अबतक वे थे, प्रियतम!
उस दिन पर खिसक गयी कटिसे, किङ्किणी अचानक थी, प्रियतम!
वे जीत गये, यह आज मिला है पुरस्कार मुझको, प्रियतम॥ ९६२॥

केलिमञ्जर्याः उक्तिः—

अञ्जन अनामिकासे लेकर, वे चले आँजने थे, प्रियतम!
तेरे लोचन, इतनेमें कर दोनों काँपे उनके, प्रियतम!
बायेंको तू सँभालती थी, सुखमय अवलंबन दे, प्रियतम!
दहिनेको मैंने थामा था, उसका बदला यह है, प्रियतम॥ ९६३॥

विलासमञ्जर्याः उक्तिः—

शत-सहस निहोरोंसे दबकर, साहस बटोर पायी, प्रियतम!
नाची थी दस पल, नीरज मुख उनका यह देख खिला, प्रियतम!
राका-शशिको साखी रखकर, मेरे कर उरमें ले, प्रियतम!
जो दान दिया था मुझे, मोल है रखता इतना ही, प्रियतम॥ ९६४॥

लासिकायाः उक्तिः—

'कैसी होती है कविता, यह तुझमें मैं देख सका, प्रियतम!
अब निरवधि रस भरती रहना, इन कर्णपुटोंमें तू' प्रियतम!
उनके मुखसे निकला था, यह सुनकर वर्णन मेरा,प्रियतम!
तेरे दृगका, फूली मैं, पर थे भाल लेख ऐसे, प्रियतम॥ ९६५॥

प्रेममञ्जर्याः उक्तिः—

तेरस आषाढी शुक्लाका अपराह्ण काल वह था, प्रियतम!
आठों कुञ्जोंमें घूम-घूम अत्यन्त थकी मैं थी, प्रियतम!
प्रस्वेद भरा था गालोंपर मेरे, समीर चुप था, प्रियतम!
उस समय मिले थे वे, पर यह सर्वथा भूल बैठे, प्रियतम॥ ९६६॥

कुन्दमञ्जर्याः उक्तिः—

मेरा हँसना उनको इतना प्रिय था कि हाथ रखते, प्रियतम!
मेरे चरणोंपर, फिर भी जब मैं रोक हँसी लेती, प्रियतम!
कैसी-कैसी मुद्रा रचते, आखिर मैं हँस पड़ती, प्रियतम!
वह समझ न पायी, क्रन्दनकी बन रही भूमिका थी, प्रियतम॥ ९६७॥

मञ्जुलीलायाः उक्तिः—

भूली-सी बैठी सोच रही थी, 'सत्य कौन मैं हूँ?' प्रियतम!
फागुन शुक्ला षष्ठीका था मध्याह्न हुआ न अभी, प्रियतम!
पीयूष-सरित था, सागर था उमड़ा क्षणभर सहसा, प्रियतम!
है बड़वानल पर उसमें भी, जाकर अब समझ सकी, प्रियतम॥ ९६८॥

मदनसुन्दर्याः उक्तिः—

वह तेरे सरस सरोवरका मध्यस्थ कुञ्जथल था, प्रियतम!
श्यामा थी मेरे साथ और मिलने आये वे थे, प्रियतम!
उनकी उस अतुल सरसताका, फिर आज विरसताका, प्रियतम!
दोनों ही चित्र सामने हैं, री! हँसूँ कि रोऊँ मैं, प्रियतम॥ ९६९॥

पद्ममञ्जर्याः उक्तिः—

'स्वर्णिम मृदुला इस वेलीके उपयुक्त नील तरु है, प्रियतम!
द्रुम यह निसर्गका भी स्वभाव जब नहीं छोड़ता है, प्रियतम!
वे तो फिर अविचल हैं ही', मैं बोली, वे भी बोले, प्रियतम!
था 'एवमस्तु' पर वह झूठा, सावन सित बारसका, प्रियतम॥ ९७०॥

अशोकमञ्जर्याः उक्तिः—

सुन्दर अशोककी छायामें निर्मित निकुञ्ज वह था, प्रियतम!
री! तेरे और साँवरीके वे बीच अवस्थित थे, प्रियतम!
'हो नित्य सुहागिन तुम सब तो', है उक्ति सत्य उनकी, प्रियतम!
सिन्दूर माँगपर हुतभुक्-सा जल रहा किंतु यह है, प्रियतम॥ ९७१॥

सुधामञ्जर्याः उक्तिः—

‘अनुरूप नामके ही तेरे, है सुधा भरी तुझमें’ प्रियतम!
वे कहते थे, मैं भोली थी, यह सत्य मान बैठी, प्रियतम!
अतएव फुल्ल हो कह देती, मैं मधुर खरी-खोटी, प्रियतम!
गजदन्त दिखाने-खानेके हैं दो, अब समझी हूँ, प्रियतम॥ ९७२॥

मोदिन्याः उक्तिः—

‘करती है जो गठबन्धन, वह लेती है नेग भला’ प्रियतम!
बोली मैं अभिनयमें थी, फिर उनका उत्तर यह था, प्रियतम!
‘प्रियतमा नित्य तेरी हैं ही, मैं भी हूँ अब तेरा’ प्रियतम!
ऐसा ही अबतक लगा, किंतु है खेल खेल ही तो, प्रियतम॥ ९७३॥

माधव्याः उक्तिः—

उस दिनकी आँखमिचौनीमें, तू निर्णय दे बैठी, प्रियतम!
‘अस्पृश्य हुए माधव हैं, ली छू लता माधवीने’ प्रियतम!
दो पलका वह वियोग उनको अखरा, बोले मुझसे, प्रियतम!
‘तू मुझे बचा ले और कीन ले’, क्या वह सपना था, प्रियतम॥ ९७४॥

शशिरेखायाः उक्तिः—

कानन मयंक-किरणोंसे था भूषित, मैं बैठी थी, प्रियतम!
वे राग भरे लोचनसे थे मुझको ही देख रहे, प्रियतम!
‘तेरा अधरस्मित उज्ज्वल है सुन्दर शशिकरसे भी’ प्रियतम!
उनका कहना, दृगका झरना, कोरा मेरा भ्रम था, प्रियतम॥ ९७५॥

हारहीरायाः उक्तिः—

अवगाहन कर तू सरसे थी निकली, जल-बूँदें थीं, प्रियतम!
तेरे कुन्तलसे झरती, यह मैं देख कह उठी थी, प्रियतम!
‘है भरी कृष्णता जिसमें भी, चूता है रस उससे’ प्रियतम!
‘रीता पर फिर हो जाता है’, बोले वे, सच वह है, प्रियतम॥ ९७६॥

सुकेश्या: उक्ति:—
'इस शारदीय पूनो निशिमें, उस इन्द्रनीलमणिको, प्रियतम!
मैं जड़ूँ जम्बुसरितावाली, इस पुरट अँगूठीमें' प्रियतम!
कीमत मैंने यह चाही थी कुन्तल सँवारनेकी, प्रियतम!
'ऐसा ही हो' वे बोले, क्या था यही अर्थ उसका, प्रियतम॥ ९७७॥

कुन्दलताया: उक्ति:—
मैं साध अनादि लिये यह थी, मेरे उस परिणयका, प्रियतम!
उनके प्रच्छन्न पाणिधारणवाले उस अभिनयका, प्रियतम!
हो पर्यवसान नित्य तेरे, उनके सुखवर्धनमें, प्रियतम!
था वचन दिया उनने भी, पर है सार हीन आशा, प्रियतम॥ ९७८॥

सौदामिन्या: उक्ति:—
उनके उत्तरको अब समझी, मैंने था प्रश्न किया, प्रियतम!
'क्यों अहो! प्रीतिकी गति सीधी होती है नहीं कभी?' प्रियतम!
'साँचेके ही अनुरूप वस्तु रसकी ढल जाती है, प्रियतम!
टेढ़ा मैं हूँ, छू मुझे नित्य टेढ़ी चलती यह है' प्रियतम॥ ९७९॥

हंसिन्या: उक्ति:—
'मिलनेसे पहले अमिलनका रहता है दुःख बड़ा, प्रियतम!
मिलते ही किंतु न रहता है दो-पनका भेद वहाँ' प्रियतम!
जीवनकी धारा ऐसी ही समझे बैठी मैं थी, प्रियतम!
अब पता लगा, शिक्षा उनकी, वंचना भरी यह थी, प्रियतम॥ ९८०॥

सुलोचनाया: उक्ति:—
आँखोंमें तन्द्रा-सी आयी उनकी, मैंने देखा, प्रियतम!
विश्राम करें, जग-जगकर अब हो गये श्रमित ये हैं, प्रियतम!
अतएव बहाना कर मैंने अपने लोचन मूँदे, प्रियतम!
री! तत्कालीन उक्ति उनकी क्या वह बनावटी थी, प्रियतम॥ ९८१॥

मञ्जुलायाः उक्तिः—
लोचन भर-भर आते उनके, पुलकित थे अङ्ग सभी, प्रियतम!
वे लिखते पुनः मिटाते थे, मृगमदके चित्रोंको, प्रियतम!
केवल वक्षस्थल-चित्रणमें पूरी हो गयी निशा, प्रियतम!
उल्लास दृगोंका उस दिनका उनके क्या कृत्रिम था, प्रियतम॥ ९८२॥

चारुशीलायाः उक्तिः—
तेरी ग्रीवामें सुमनोंका वे पदक धराते थे, प्रियतम!
मैं भूल गयी अपनेको ही, होकर तन्मय उसमें, प्रियतम!
लौटी जब फिर इस तनमें थी, हो चुकी दुपहरी थी, प्रियतम!
उनका मुझको उरमें भर, वह सब कहना ठगना था, प्रियतम॥ ९८३॥

विद्युन्मालायाः उक्तिः—
'है तडितपना तुझमें, मेरा है रंग नील घनका, प्रियतम!
तेरा घर मेरा उर ही है, तू आ छिप जा इसमें' प्रियतम!
उनने था कहा, निशामें यह भादों सित षष्ठीकी, प्रियतम!
मैं तो वैसी-की-वैसी हूँ, बदला पयोद नीला, प्रियतम॥ ९८४॥

सरोजिन्याः उक्तिः—
थी साँझ, महावर लगा रहे वे थे तेरे पदमें, प्रियतम!
उनका, मेरा मन डूब गया, उस चिह्न सरोरुहमें, प्रियतम!
जागे जब हम, शशि चला गया, रवि लगा झाँकने था, प्रियतम!
था एक समय वह भी, अब है यह दिवस आजका भी, प्रियतम॥ ९८५॥

मदनालसायाः उक्तिः—
कोई क्या भाँप सकी अबतक, ऐसा होता क्यों था, प्रियतम!
आती जब तुझे जँभाई, दृग मीलित होते उनके, प्रियतम!
अपनी भावना सरस उनने, थी कही एक मुझसे, प्रियतम!
पर थी विडम्बना मेरी वह, सच होती, क्यों जाते, प्रियतम॥ ९८६॥

इन्दिरायाः उक्तिः—
दो घड़ी शेष रजनी थी, तू, मैं, वे, थे तीन जने, प्रियतम!
तू लेट गयी दृग बन्द किये, बैठी मैं थी, वे थे, प्रियतम!
रेखा है ऊर्ध्व वाम पदमें तेरे, जो फल उसका, प्रियतम!
कह रहे कानमें थे मेरे, झूठा क्या है वह भी, प्रियतम॥ ९८७॥
मनोहरायाः उक्तिः—
हेमन्त अष्टमी उजियारी, थी प्रथम मासवाली, प्रियतम!
हिमकर, निकुञ्ज लतिकाकी ले था ओट नमन करता, प्रियतम!
संदेश कुछ तुझे देता था, अनुमति लेता-लेता, प्रियतम!
उस समय कह उठे थे वे जो मुझसे, कैसे भूलूँ, प्रियतम॥ ९८८॥
अवशिष्टानां सहचरीणां उक्तिः—
वैशाखी सित नवमी थी यह, देवीका स्वप्न हुआ, प्रियतम!
बहुकाल पुनीत उसी व्रतके परिणाम सभी हम हैं, प्रियतम!
साँवरने हमें जगाया था, लेकर भुज बन्धनमें, प्रियतम!
बोले—'इस नित्य मिलनकी ही यह नित्य भूमिका है' प्रियतम॥ ९८९॥
सहसा सब सहचरियाँ क्रन्दन कर उठीं करुण इतना, प्रियतम!
जो बात दूतकी दूर, विकल हो नीर सरोवरका, प्रियतम!
बढ़कर कूलोंको प्लावितकर, छूकर कटितक उनको, प्रियतम!
बह चला, वनस्थलके द्रुमकी मूलोंसे उलझ गया, प्रियतम॥ ९९०॥
साँवरका किंकर हूँ, ज्ञाता मैं परमतत्त्वका भी, प्रियतम!
जो दूत लिये मनमें यह था अभिमान, बहा उसमें, प्रियतम!
साँवरसे जुड़ा हुआ जीवन कैसा हो जाता है, प्रियतम!
वह आज तनिक-सा देख सका, बालाकी सखियोंमें, प्रियतम॥ ९९१॥
खुल गया द्वार अब अन्तरका, आलोक मिला सच्चा, प्रियतम!
लोचनके आगे छाया था, जो तिमिर अनादि मिटा, प्रियतम!
साँवर हैं क्या? बाला है क्या? रस है क्या? तत्त्व सही, प्रियतम!
यह मिला किसीको जिधर, वही पथ आज मिला उसको, प्रियतम॥ ९९२॥

बाला पुतली-सी थी बैठी, आँखोंसे रेखा-सी, प्रियतम!
अविराम भावना हृत्तलकी, विगलित हो थी आती, प्रियतम!
हो निर्निमेष वह दूत, लगा भरने अपने दृगमें, प्रियतम!
थोड़ी-सी भरते ही, उसको अनुभूति विचित्र हुई, प्रियतम॥ ९९३॥

मानो बिजली-सी चमक गयी, पीला पट फहर उठा, प्रियतम!
साँवरका, जो पहने वह थी लहँगा नीला, उसमें, प्रियतम!
फिर पीले अम्बरके अन्दर नीली साड़ी उसकी, प्रियतम!
थी स्यूत हुई, था भरा पुनः पीताभ चीर उसमें, प्रियतम॥ ९९४॥

नीले-पीले वसनोंका क्रम निर्धारित हो जैसे, प्रियतम!
तह-पर-तह बने अतुल, सज्जित, अगणित, अनन्त वे थे, प्रियतम!
फिर उसी तरह पद पृष्ठोंकी कोमल अंगुलियोंकी, प्रियतम!
स्वर्णिम छविमें घन था, घनमें फिर थीं पिङ्गल लहरें, प्रियतम॥ ९९५॥

कटिसे ऊपर आँखें जब थीं उठती, तब था लगता, प्रियतम!
बालामें हैं साँवर पूरित, साँवरमें है बाला, प्रियतम!
भीतर, फिर भीतर, वैसे ही ज्यों-ज्यों दृग थे बढ़ते, प्रियतम!
क्रमशः असंख्य थे साँवर, थी क्रमसे बाला उनमें, प्रियतम॥ ९९६॥

जब लगा दीखने था ऐसे उस दूत मनीषीको, प्रियतम!
हो गया भ्रमित, साँवर हैं या बाला सम्मुख मेरे, प्रियतम!
'अधिदेवि! पाहि हे, पाहि सदा साँवरके प्राणोंकी, प्रियतम!
देवीके देव! पाहि'-कहकर ली मूँद आँख उसने, प्रियतम॥ ९९७॥

सुन पड़ी मधुरतम वंशीकी इतनेमें तान उसे, प्रियतम!
जो निकट, निकटतर उसके थी क्रमशः होती जाती, प्रियतम!
मादकता भरी हुई उसमें ऐसी थी, जो न कहीं, प्रियतम!
थी मिली कभी उसको, मोहित होकर वह झूम उठा, प्रियतम॥ ९९८॥

लोचन बरबस खुल गये तथा दीखा सुन्दर वन है, प्रियतम!
गो-चारणकर धीरे-धीरे साँवर हैं लौट रहे, प्रियतम!
आ गये समीप, रही दूरी जब दो हाथोंकी थी, प्रियतम!
हँस पड़े और बोले—"भैया! मेरा घर तो यह है, प्रियतम॥ ९९९॥

देखो प्रस्तुत कर नीराजन वह बाट देखती है, प्रियतम!
मेरी मैया आकुल, 'मेरा साँवर आता होगा' प्रियतम!
केवल हैं तीन पहर बीते, लेकर अपनी गायें, प्रियतम!
मैं था अरण्यमें घूम रहा, चिन्तामें है जननी" प्रियतम॥ १०००॥

दीखी प्रवाहिणी कृष्णा फिर, लहराती थी बहती, प्रियतम!
शोभित निकुञ्ज सद्मोंकी थी अवली तटपर उसके, प्रियतम!
बालाके दक्षिण कंधेपर कर रखकर, साँवर थे, प्रियतम!
उससे कहते कुछ, थी बाला आँखोंमें प्यार लिये, प्रियतम॥ १००१॥

दोनों हँसते फिर चले गये, आगे उसने क्या-क्या, प्रियतम!
देखा, कैसे कह दूँ सब कुछ, है बात बड़ी लंबी, प्रियतम!
इतनी-सी कह देती हूँ, वह अनुभव कर धन्य हुआ, प्रियतम!
बालाको लेकर नित्य यहीं साँवर हैं खेल रहे, प्रियतम॥ १००२॥

हो गये दिवस कितने उसको, आये इस काननमें, प्रियतम!
हो गयी उसे विस्मृति इसकी डूबा रहता रसमें, प्रियतम!
बालाकी सहचरियाँ जो कुछ कहतीं, सुनता रहता, प्रियतम!
बालाके सम्मुख जाकर तो केवल रोने लगता, प्रियतम॥ १००३॥

किसलिये, अचानक भान हुआ, आया था यहाँ सही, प्रियतम!
निकली मनसे फिर बात वहीं साँवरके रहनेकी, प्रियतम!
ले रहा हिलोरें सागर था, दुखका जिसमें सब थीं, प्रियतम!
वे डूब रही, था पास खड़ा वह, याद रही इतनी, प्रियतम॥ १००४॥

हूँ निपट अनधिकारी इनका दर्शन कर लेनेका, प्रियतम!
सपनेमें भी अनुभव ऐसा अब दूत लगा करने, प्रियतम!
मौखिक शरणागतिसे भी वे साँवर ढर जाते हैं, प्रियतम!
अतएव दया कर दी उनने, मुझको ही भेज दिया, प्रियतम॥ १००५॥
जाना है किंतु यहाँसे अब, मेरे जैसा कोई, प्रियतम!
कैसे रह सकता है पदकी छायामें बालाके, प्रियतम!
आँसूसे जो सींचूँ उरको, चिरकाल रहे वर्षा, प्रियतम!
आशा मेरी वह एक कहीं अंकुरित भले तब हो, प्रियतम॥ १००६॥
सुन सका न बालाकी वाणी, मेरा वह भाग कहाँ? प्रियतम!
विनती करनेका भी मुझको अधिकार नहीं, सच है, प्रियतम!
जो स्वतः कहीं कह दे कुछ यह, जीवन अनन्ततकका, प्रियतम!
सम्बल मिल जाय मुझे, फिर तो कोई न मिले मुझ-सा, प्रियतम॥ १००७॥
टप-टप झरकर दृग थे उसके, अवनी गीली करते, प्रियतम!
मन-ही-मन विनय सुनाता था, अत्यन्त अधीर हुआ, प्रियतम!
'हे साँवर नाथ! दया मुझपर, इतनी-सी और करो, प्रियतम!
ये श्रवण सदाके लिये तृषित रह जायँ नहीं मेरे' प्रियतम॥ १००८॥
बालाकी एक बहिन, छोटी उससे जो थी श्यामा, प्रियतम!
करुणाकी धारा-से स्वरमें कह उठी नहायी-सी, प्रियतम!
'री बहिन! दूत अब जाता है साँवरकी सेवामें, प्रियतम!
उनका संदेश लिये यह था आया, तू भी दे-दे' प्रियतम॥ १००९॥
सागरके नील अतल तलसे ऊपर वह उठ आयी, प्रियतम!
अपनी उस बहिन कनिष्ठाकी ठोढ़ीको छू करके, प्रियतम!
रोती कुछ देर रही अतिशय विह्वल, भरकर सुबकी, प्रियतम!
धीरज समयोचित धर, उसकी फिर लाड़ चली रखने, प्रियतम॥ १०१०॥

दशम शतक समाप्त

॥ विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ॥

एकादश शतक

अञ्चलसे पोंछ अश्रु बोली, बाला, लेकर माला, प्रियतम!
साँवरने जो पहनायी थी जाते-जाते उसको, प्रियतम!
"क्या दूँ संदेश भला उनको, अच्छा, कहना उनसे, प्रियतम!
सुखसे रहना, सपनेमें भी छूए न शोक तुमको, प्रियतम॥ १०११॥

है कुञ्ज हृदय यह बना हुआ, जिसमें रहते तुम हो, प्रियतम!
भ्रम होता है यह सदा मुझे, मैं जान नहीं पायी, प्रियतम!
दो बनकर हो तुम खेल रहे या हूँ दीवानी मैं, प्रियतम!
निर्णय इसका अब कौन करे, कर लेना तुम मनमें, प्रियतम॥ १०१२॥

सचमुच ही हो यदि चले गये दासीको छोड़ यहाँ, प्रियतम!
है उचित किया तुमने तब तो पाओगे सुख इससे, प्रियतम!
सुन्दर तुम हो, दृगमें उरमें निर्मल अनुराग लिये, प्रियतम!
मुझमें सुन्दरताका भ्रम, था हो गया अतः तुमको, प्रियतम॥ १०१३॥

सद्गुण है मुझमें एक नहीं, दोषोंकी हूँ प्रतिमा, प्रियतम!
रीझे तुम थे फिर भी केवल मुझपर, सबको भूले, प्रियतम!
लज्जामें गड़ जाती, जब तुम देकर सर्वस्व मुझे, प्रियतम!
'प्राणेश्वरि!'—कह उरमें भरते गुण-रूप-विरहिताको, प्रियतम॥ १०१४॥

जब रूप नहीं, गुण लेश नहीं, भ्रम दूर करूँ कैसे, प्रियतम!
कैसे समझाऊँ मैं तुमको, थी समझ नहीं पाती, प्रियतम!
फिर भी प्रतिदिन तुमसे इसका संकेत किया करती, प्रियतम!
थक जाती जब, लेती सँवार अपने इन अङ्गोंको, प्रियतम॥ १०१५॥

हो जाऊँ तनिक, कदाचित् मैं सुन्दर सँवारनेसे, प्रियतम!
ये कहीं वसन-भूषण-चन्दन, मेरा कुरूप ढक दें, प्रियतम!
आदर्श गुणोंसे भूषित जो सहचरियाँ हैं मेरी, प्रियतम!
उनको करती थी याद, कहीं छू लूँ छाया उनकी, प्रियतम॥ १०१६॥

होता था किंतु सदा ही यह अनुभव, न बनी मैं हूँ, प्रियतम!
गुणवती, सुरूपा, जिसको तुम दे दो सब कुछ अपना, प्रियतम!
इतने पर भी था प्यार मिला मुझको तुमसे ऐसा, प्रियतम!
जो ले न सकी अबतक कोई, आगे तुम ही जानो, प्रियतम॥ १०१७॥

अतएव सत्य ही हो, यदि तुम मुझसे हो विलग हुए, प्रियतम!
उस राजाकी नगरीमें जा बस गये कहींपर हो, प्रियतम!
मिल गयी संगिनी हो तुमको कोई मनभायी-सी प्रियतम!
है भाग खुला तब तो मेरा, सुखिया हूँ आज हुई, प्रियतम॥ १०१८॥

विधिने मेरी विनती सुन ली, आखिर तुम चेत सके, प्रियतम!
मेरे प्रति जो था मोह महा, छूटा फंदा उसका, प्रियतम!
प्राणाधिक! भूल सके हो यदि सचमुच इस दासीको प्रियतम!
दे प्यार किसीको, नाथ! अहा! कितने सुखमें होगे, प्रियतम॥ १०१९॥

दे रही कल्पना ही जब है सुख यह अपार मुझको, प्रियतम!
हो जाय कहीं यह सत्य भला, फिर तो क्या है कहना, प्रियतम!
लगता है किंतु असंभव यह, तुम भूल सको मुझको, प्रियतम!
है पता अनादि कालसे कुछ, तुम हो कैसे मेरे, प्रियतम॥ १०२०॥

जो दूत बना है उससे या अनुताप लिये उरमें, प्रियतम!
कहती है जो मुझसे, 'री! वे हैं चले गये' उससे, प्रियतम!
कहती हूँ, अच्छा सुनो तनिक, पर मत कहना सबसे, प्रियतम!
जीवन क्या है, जाकर देखो, उनका, जुड़कर मुझसे, प्रियतम॥ १०२१॥

वक्षस्थलकी धड़कनमें है, बस, नाम भरा मेरा, प्रियतम!
आँखोंकी काली पुतलीमें हूँ भरी हुई मैं ही, प्रियतम!
उनके प्रत्येक रोममें हूँ परिपूरित केवल मैं, प्रियतम!
उनकी प्रत्येक वृत्तिमें है इस दासीका मुख ही, प्रियतम॥ १०२२॥

कोई है शक्ति छिपी उनमें, जिससे कोई उनको, प्रियतम!
पहचान नहीं पाता, तुम भी भोले हो या भोली, प्रियतम!
उनका मेरा वियोग होना संभव है नहीं कभी, प्रियतम!
रोते-रोते धुलकर आँखें यह सत्य सुलभ होगा, प्रियतम॥ १०२३॥

रोती क्यों हूँ फिर मैं, इसका कुछ मर्म बताती हूँ, प्रियतम!
संकोच नहीं है तनिक मुझे इसके कह देनेमें, प्रियतम!
क्रन्दन अनादि यह है मेरा, होगा न अन्त इसका, प्रियतम!
तुम समझ सको तो लो समझो, जीवन यह है मेरा, प्रियतम॥ १०२४॥

है प्रेम पाठशाला उरमें, पढ़ती थी, हूँ पढ़ती, प्रियतम!
है प्रथम पाठ उच्चारण कर लिखना उन वर्णोंको, प्रियतम!
खड़िया मिट्टीसे नहीं, अश्रु भीतरसे आता है, प्रियतम!
गोली-सी काँचमयी बनकर, अक्षर लिख जाता है, प्रियतम॥ १०२५॥

अक्षरका बोध हुआ जिसको, लिखती है शब्दोंको, प्रियतम!
सीधे-सीधे रजताभ तनिक, उन वारि बिन्दुओंसे, प्रियतम!
संयुक्त हुए फिर आते हैं बनकर सरसीले वे, प्रियतम!
आँखोंकी स्वर्णकणावलिसे लिखकर पढ़ती वह है, प्रियतम॥ १०२६॥

अब है विधेय-उद्देश्यमयी वह भाव-पंक्ति आती, प्रियतम!
रहता है गूढ़ अर्थ निरुपम, अज्ञात किंतु उसका, प्रियतम!
जो है विशुद्ध वह सत्त्वमयी अविराम नयनधारा, प्रियतम!
लिखते-लिखते उससे सबकी ताली मिल जाती है, प्रियतम॥ १०२७॥

है हेतुरहित जो सूक्ष्म, अमल, वह महाभाव विद्या, प्रियतम!
प्रतिपल है जो बढ़ती अखण्ड, सीमाविहीन जो है, प्रियतम!
वस्तुतः अनिर्वचनीय सदा, अनुभवमय है गहरी, प्रियतम!
अभिनव सुन्दर 'अथ' है उसका, कहनेके लिये यही, प्रियतम॥ १०२८॥

'आगे क्या है' कोई भी क्या कह सकती है इसको, प्रियतम!
आगे जाकर जो डूब गयी, फिरती है क्या पीछे! प्रियतम!
कहती है जो जितना कुछ भी, है बात इधरकी ही, प्रियतम!
कहनेवाली मुझ-सी सचमुच है डूबी हुई नहीं'' प्रियतम॥ १०२९॥

इतना कहती-कहती बाला आकुल हो दौड़ चली, प्रियतम!
श्यामल तमालकी शाखाको करमें लेकर बोली, प्रियतम!
''जीवनधन! चलो वहाँ अब तुम, है जहाँ स्रोत नीला, प्रियतम!
दी थी तुमने जो यह, तुमको पहनाऊँगी माला, प्रियतम॥ १०३०॥

हूँ आर्द्र किये रहती इसको नयनोंकी बूँदोंसे, प्रियतम!
मुरझा न उठे यह किञ्चित् भी, इस भयसे भीत हुई, प्रियतम!
हूँ सीख सकी अबतक मैं यह, केवल इतना-सा ही, प्रियतम!
जो वस्तु मिले तुमसे उसको वैसी ही है रखनी, प्रियतम॥ १०३१॥

पर नाथ! मुझे लेकर तुमको जाना है इस वनसे, प्रियतम!
ठहरी क्यों हूँ फिर मैं, अच्छा, कह देती हूँ यह भी, प्रियतम!
यह माला ही बन्धन है, मैं देकर किसको जाऊँ, प्रियतम!
कोई न मिली मुझको ऐसी, करपर जिसके रख दूँ, प्रियतम॥ १०३२॥

है नहीं फेंक देना संभव, इसको न साथ लेना, प्रियतम!
इसमें, तुममें है भेद नहीं, थी जुड़ी उरस्थलसे, प्रियतम!
मैंने देखा, हूँ देख रही, कण-कणमें तुम इसके, प्रियतम!
हो भरे हुए तुम ही, हो या यह बनकर खेल रहे, प्रियतम॥ १०३३॥

हूँ सोच रही, इनकी ही यदि, वह उक्ति सत्य निकले, प्रियतम!
फिर भी तुम तो आओगे ही, आकर पर जो देखो, प्रियतम!
माना था प्राणेश्वरी जिसे, है फेंक दिया उसने, प्रियतम!
वह हार बना था जो मैं ही, आकुल कितने होगे, प्रियतम॥ १०३४॥

'पगली थी भोली थी दुखिया'—कहकर कुछ ऐसे ही, प्रियतम!
तुम लौट चले जानेवाले होते यदि पुनः कहीं, प्रियतम!
होती न मुझे इसकी चिन्ता, जाती मैं चली कभी, प्रियतम!
रोओगे पर तुम तो ऐसा, फट जाय हृदय नभका, प्रियतम॥ १०३५॥

मुरझा, जब धूल सनी माला, अवनीपर पड़ी हुई, प्रियतम!
कह देगी मेरी बात विदा हो जानेकी तुमसे, प्रियतम!
मानिनी हुई इन कुञ्जोंमें हूँ छिपी नहीं अब मैं, प्रियतम!
अब दूर, दूर, अत्यन्त दूर जा चुकी अकेली हूँ, प्रियतम॥ १०३६॥

उस ओर जिधर जाकर कोई है लौट नहीं पायी, प्रियतम!
है कहीं नहीं इतिहासोंमें ऐसा वर्णन मिलता, प्रियतम!
जीवित रह जाओगे क्या तुम, रहनेके लिये यहाँ, प्रियतम!
उस महाप्रलयको, भ्रमसे भी मैं सोच नहीं सकती, प्रियतम॥ १०३७॥

कोई कह दे—'फिर भोली री! क्यों साथ न ले जाती' प्रियतम!
वह समझ नहीं पाता कुछ भी रस-रीति, अतः कह ले, प्रियतम!
है नहीं कभी उसने देखा मेरा मिलना तुमसे, प्रियतम!
होता है निरावरण कैसा राकाकी रजनीमें, प्रियतम॥ १०३८॥

अपनी ग्रीवामें जबतक तुम, मालाको थे पहने, प्रियतम!
थे सभी कुसुम अविकृत इसके, आवरणहीन हँसते, प्रियतम!
अपनी इस दासीको तुमने, पहना दी इससे ही, प्रियतम!
मैं थी जैसी ये फूल बने, पड़कर छाया मेरी, प्रियतम॥ १०३९॥

जो देख रहे तुमको थे वे, प्रतिबिम्ब-गृहीत हुए, प्रियतम!
परछाँही लगी अधिक प्यारी, भूला स्वरूप उनको, प्रियतम!
अभिमान भरी मैं तुमसे थी, आराधन करवाती, प्रियतम!
अपने शरीरका दोष अतः, इनमें भी वह आया, प्रियतम॥ १०४०॥

अब उसी उरस्थलपर इनको, है मुझे झुला लेना, प्रियतम!
मिलकर तुमसे ये पुनः मुझे, तुमको पहचानेंगे, प्रियतम!
एवं उस धागेको, जिसमें सब नित्य पिरोये हैं, प्रियतम!
रोकर हँसकर फिर हम दोनों खेलेंगे खेल नया, प्रियतम॥ १०४१॥

इस वनमें नहीं, उधर आगे, आगे-से-आगे जा, प्रियतम!
है नित्य रसोदधि नील जहाँ क्रमशः गहरा-गहरा, प्रियतम!
है सदा एक-से-एक ऊर्मि ऊँची उठती रहती, प्रियतम!
जो है अनादि एवं अनन्त, उसमें क्रीडा होगी'' प्रियतम॥ १०४२॥

इतना कहकर फिर छोड़ चली, द्रुमकी डाली बाला, प्रियतम!
आगे कुछ और बढ़ी, मुड़कर हँसती-हँसती बोली, प्रियतम!
''हो प्राणनाथ! तुम? नहीं, नहीं, यह है मयूर बैठा, प्रियतम!
बिगड़ी है बुद्धि अहो मेरी, है कृष्ण मधुप यह तो, प्रियतम॥ १०४३॥

कुछ सोच रहा है, जैसे वे गम्भीर कभी होते, प्रियतम!
प्रायः है रंग-ढंग इसका मिलता-जुलता उनसे, प्रियतम!
है म्लान दीखता किंतु हाय! इस समय न जाने क्यों, प्रियतम!
संभव है यह मेरा प्रलाप सुनकर है खिन्न हुआ, प्रियतम॥ १०४४॥

मैं देख न सकी हाय! दृग हैं बह रहे सतत इसके, प्रियतम!
भौंरा प्यारे! रोओ मत तुम, कह दो सब कुछ मुझसे, प्रियतम!
जो कुछ भी लिये हृदयमें हो, संकोच न तनिक करो, प्रियतम!
मैं हूँ उनकी प्यारी दासी, जो चाहोगे, दूँगी, प्रियतम॥ १०४५॥

है कोष पूर्ण, सर्वदा अतुल, अक्षय, असीम उनका, प्रियतम!
स्वामिनी किंतु यह है दासी, सर्वदा सदा उसकी, प्रियतम!
उज्ज्वल तारोंकी यह कुंजी प्राणाधिकने मेरे, प्रियतम!
देखो बाँधी अपने करसे, हँसकर है अञ्चलमें, प्रियतम॥ १०४६॥

अतएव असंभव भी संभव करके दूँगी तुमको, प्रियतम!
विश्वास करो, उनकी दासी, है सत्य सदा कहती, प्रियतम!
है भौंर कठिन कीमत देनी, आँखोंकी बूँदोंकी, प्रियतम!
अनमोल भला ये हैं, इनका प्रतिदान नहीं होता, प्रियतम॥ १०४७॥

कोई विरला होता है जो लेता है समझ इसे, प्रियतम!
खोता न कभी इनको वह है, बाहर लाकर दृगसे, प्रियतम!
मिटकर शरीरकी सुधि, बरबस गिर पड़ती हैं जब ये, प्रियतम!
लेती हूँ बीन दौड़कर मैं, पाऊँ जो देख कहीं, प्रियतम॥ १०४८॥

फिर हार बना, जीवनधनके उरपर रख देती हूँ, प्रियतम!
हँसकर, उरमें भर फिर मुझको पहना रोते वे हैं, प्रियतम!
उनके करतलपर सिर रखकर रो उठती हूँ अब मैं, प्रियतम!
है सुख अचिन्त्य हम दोनोंके हँसने, उस रोनेका, प्रियतम॥ १०४९॥

इसलिये मिलिन्द! कहो, देकर यह भेंट अनूप मुझे, प्रियतम!
लेनेकी क्या अभिलाषा है, सब कुछ हूँ लिये खड़ी, प्रियतम!
देनेमें ही सुख है मुझको, लेनेसे अधिक कहीं, प्रियतम!
उनका-मेरा स्वभाव कुछ है चिरकाल एक-सा ही'' प्रियतम॥ १०५०॥

वाणी बालाकी रुद्ध हुई, लज्जामें समा गयी, प्रियतम!
कहती-कहती कह दी उसने, जो बात न थी कहनी, प्रियतम!
होकर कुछ सावधान-सी फिर बोली—''मधुकर तुम, हे प्रियतम!
बचना छायासे भी मेरी, भ्रमसे भी मत छूना, प्रियतम॥ १०५१॥

है मुझे प्रशंसा प्रिय अपनी, कर गयी स्वयं मैं हूँ, प्रियतम!
निर्मल मति हो इससे, इसपर विश्वास किया तुमने, प्रियतम!
हो गये प्रभावित ठगिनीकी ठग-भरी सरलतासे, प्रियतम!
फिर चले पकड़ने चरण महामलिना, इस अधमाके, प्रियतम॥ १०५२॥

है सुधासिन्धुमें, छिल्लरकी कणिकामें अन्तर जो, प्रियतम!
रवि-शशिके किरण-दानमें, फिर जुगनूके उड़नेमें, प्रियतम!
चिन्तामणिमें, उस छिन्न काँच मलपूरितमें जो है, प्रियतम!
इतना पृथकत्व शीलका है उनके एवं मेरे, प्रियतम॥ १०५३॥

लेती-लेती न थकी मैं, वे हारे न कभी दे-दे, प्रियतम!
'क्या मिला?' सदा बोली मैं, वे 'दे कुछ न सका' बोले प्रियतम!
थी गर्व लिये 'स्वाहा सब कुछ करके जीती मैं हूँ' प्रियतम!
'न्योछावर मैं न हुआ, धिक है जीवन', कहते वे थे, प्रियतम॥ १०५४॥

इतने पर भी लज्जाहीना, समता करने बैठी, प्रियतम!
उनसे अपनी, अलि हे रसविद्! भारी अपराध हुआ, प्रियतम!
करती थी दम्भ सदा मैं, हूँ करती रहती अब भी, प्रियतम!
दे प्यार नहीं पायी क्षणभर सपनेमें भी उनको'' प्रियतम॥ १०५५॥

हो उठी विकल बाला, कहकर अब ''साँवर-साँवर, हे प्रियतम!
देना वरदान, न हो मुझसे अपमान किसीका भी, प्रियतम!
दूँ भौंरेको छूने कैसे, ये किंतु चरण अपने, प्रियतम!
जिनको रसमत्त हुए तुमने पोंछा था अलकोंसे, प्रियतम॥ १०५६॥

थे अभी क्षितिजके पार हुए, दिनकर समेट किरणें, प्रियतम!
लहरें श्यामा सरिताकी थीं कहतीं मुझसे, ठहरो, प्रियतम!
पर तुम कहते 'प्रियतमे! चलो, यह रात अँधेरी है, प्रियतम!
वन घोर, गहन है सम्मुखका, पथ भी टेढ़ा कुछ है' प्रियतम॥ १०५७॥

भारी असमंजसमें अब थी, कैसे क्या करूँ अहो! प्रियतम!
थी त्वरा भरी तुममें, दृगमें मनुहार लहरके थी, प्रियतम!
अनसुनी करूँ उसकी विनती या और तनिक ठहरूँ,, प्रियतम!
हँसते थे तुम, मैं चिन्तित थी, कुछ रुककर फिर बोली, प्रियतम॥ १०५८॥

'जल्दी क्या है, तुम ठगते हो, शुक्ला रजनी यह है, प्रियतम!
देखो शशधर है प्राचीमें, बस, आनेवाला ही, प्रियतम!
वह आये, मत आये, श्यामल मुख ही प्रकाश देगा ,प्रियतम!
जब हो तुम मेरे साथ सदा, क्या भय है इस वनका, प्रियतम॥ १०५९॥

रससे पूरित मीठी बातें कहकर हँसते चलना, प्रियतम!
ग्रीवामें देकर मेरी यह, कर वाम मृदुल अपना, प्रियतम!
वनदेवी कर देगी रचना सुन्दर नवीन पथकी, प्रियतम!
पहुँचेंगे सीधे हम दोनों अपने निकुञ्जगृहमें' प्रियतम॥ १०६०॥

मानो डर हो मनमें, ऐसे बोले अब तुम मुझसे, प्रियतम!
'मेरे प्राणोंकी रानी हे! अहि, एक भयंकर है, प्रियतम!
हम दोनों खड़े जहाँ अब हैं, बस उसी गगनतलमें, प्रियतम!
रहता है छिपकर वह अथवा धरणीमें धँसा हुआ, प्रियतम॥ १०६१॥

ऐसा मायावी है जिसको विरला ही जीत सके, प्रियतम!
वह इसी समय पीने पानी आता है इधर, यहीं, प्रियतम!
छाया भी पड़ते ही उसकी आती है बेहोशी, प्रियतम!
ऐसी न मिटे, जो कोटि मरें पच हार हकीम भले, प्रियतम॥ १०६२॥

उसके आनेसे पहले ही तटिनीको छोड़ चलें, प्रियतम!
देखेंगे खेल कभी फिर यह सुन्दर इन लहरोंका, प्रियतम!
क्यों व्यर्थ विकट झगड़ा भारी लें मोल अभी इससे, प्रियतम!
डर जाओगी तुम देख उसे, डसने जो दौड़ पड़े' प्रियतम॥ १०६३॥

मैं सदा हठीली जो ठहरी, बोली-'अच्छा, देखूँ, प्रियतम!
कैसा है, बतला दो केवल पूरबसे, पश्चिमसे, प्रियतम!
उत्तरसे या दक्षिण, नीचे अथवा वह ऊपरसे, प्रियतम!
आयेगा तृषा बुझाने या सुख यह हरने मेरा' प्रियतम॥ १०६४॥

कहकर, हँसकर मैं बैठ गयी, हँसते तुम खड़े रहे, प्रियतम!
बङ्किम चितवनसे उत्तरकी, फिर धरा दिखा करके, प्रियतम!
यह कहा—'जीवनेश्वरि! देखो फटती-सी यह कुछ है प्रियतम!
संभव है इस पथसे आये', इतनेमें दीख पड़ा, प्रियतम॥ १०६५॥

सचमुच अतिशय काला विषधर, फन काढ़े निकल पड़ा, प्रियतम!
डरकर मैं तुमसे चिपट गयी, बोले—'तुम भय न करो, प्रियतम!
छू छाँह नहीं सकता, मेरे प्राणोंकी देवीकी, प्रियतम!
चञ्चलता, प्राणाधिके! नहीं करना पर यहाँ भला, प्रियतम॥ १०६६॥

यह देख रंग काला मेरा, है पर-पक्षी कोई, प्रियतम!
ऐसा है सोच रहा कपटी, डरता है इससे ही, प्रियतम!
काले-टेढ़ेको होता है भय काले-टेढ़ेसे प्रियतम!
गोरी सरला तुम हो, मुझसे अतएव जुड़ी रहना', प्रियतम॥ १०६७॥

मैं भूल नहीं पाती, जलसे पूरित उन नयनोंको, प्रियतम!
'गोरी-सरला'-कहकर मुझको तुम देख रहे जब थे, प्रियतम!
प्राणोंके संवेदन ऐसे, केवल निधि हैं मेरी, प्रियतम!
कैसे; कितने सुन्दर वे हैं, किस भाँति कहूँ तुमसे, प्रियतम॥ १०६८॥

जो हो, अपलक होकर अब मैं थी देख रही अहिको, प्रियतम!
सहसा उसके मुखमें प्रतीति, ऐसी हो गयी मुझे, प्रियतम!
यह चिर-परिचित मुसकान सदा जो लिये अधरपर हो प्रियतम!
मानो है छिपी वहाँ भी, बस, विकसित होगी क्षणमें, प्रियतम॥ १०६९॥

इतनेमें उसकी आँखोंमें काली परछाँही-सी, प्रियतम!
दीखी त्रिभङ्ग इन अङ्गोंकी मुद्रा अनुपम लोनी, प्रियतम!
फिर तो उस विषधरके तनके सारे अवयवमें ही, प्रियतम!
भासित तुम एक लगे होने, चञ्चल झलमल करते, प्रियतम॥ १०७०॥

अत्यन्त अचम्भित थी, कैसे संघटित हुआ यह था, प्रियतम!
क्षण एक उसे, फिर बार-बार तुमको थी देख रही, प्रियतम!
उस महाउरग-उरमें तुम तो प्रत्यक्ष खड़े ही थे, प्रियतम!
मैं सोच रही थी, है सच यह, अद्भुत है या सपना, प्रियतम॥ १०७१॥

'मेरे प्राणोंके प्राण! सुनो' अब कहा पुनः तुमने, प्रियतम!
'क्रीडा देखो हँस-हँसकर, पर आगे मत बढ़ जाना, प्रियतम!
दुर्दमन कहीं झपटे, डस ले विषमय दो दाँतोंसे, प्रियतम!
मेरे जीवनका क्या होगा, अनुमान तनिक कर लो' प्रियतम॥ १०७२॥

हो गयी विमूढ़ा, कौतुक था यह भूल-भुलैया-सा, प्रियतम!
आखिर तुमसे कह गयी, मुझे जैसे था दीख रहा, प्रियतम!
तुम हँसे, कहा-'प्रियतमे! दया तुमने मुझपर की है, प्रियतम!
दृग-पुतरीमें हो नित्य मुझे रखती, फल है उसका, प्रियतम॥ १०७३॥

पर भाग चलें, अब तो विषधर हो गया बली मुझ-सा, प्रियतम!
आँखें डालीं तुमने इसपर, भर दिया मुझे इसमें, प्रियतम!
बल मेरा चला गया इसमें, दुर्धर्ष हुआ यह है, प्रियतम!
इसलिये चलो अविलंब अहो! कहना मेरा मानो, प्रियतम॥ १०७४॥

अब तो छद्मी पीछेसे ही हमपर जो टूट पड़े, प्रियतम!
कर पाऊँगा क्या मैं इसका, की भूल बड़ी तुमने, प्रियतम!
अतएव अङ्कमें लेकर मैं तुमको भागूँ ऐसा, प्रियतम!
जो छू न सके हम दोनोंको यह, है उपाय इतना' प्रियतम॥ १०७५॥

चिन्तित अब हुई, कदाचित् यह फिर भी न पिंड छोड़े, प्रियतम!
दुर्दैव-योगवश तेज अधिक गति बने सर्पकी ही, प्रियतम!
क्षत नील पीठपर ही कर दे, धीरे-से रच माया, प्रियतम!
मैं जान न पाऊँगी, तुम तो कहनेसे रहे इसे, प्रियतम॥ १०७६॥

थी बात बहुत-सी सोच रही, इतनेमें कानोंमें, प्रियतम!
आयी फुफकार, भयंकर-सी ध्वनि, सिहर उठी मैं थी, प्रियतम!
बोले तुम—'मेरे प्रति ही अब है रोष हुआ इसको, प्रियतम!
तुमने कर दी कुछ देर अतः भिड़ना ही है इससे, प्रियतम॥ १०७७॥

कहकर दुकूल कटिमें तुम कसते जाते, हँसते, प्रियतम!
सहसा मनमें आया देखूँ, कितना बल है अहिमें, प्रियतम!
अबला हूँ किंतु, नित्य मेरे भीतर-बाहर तुम हो, प्रियतम!
क्या सर्प सकेगा कर, इसपर मैं ही जो लपक पड़ूँ, प्रियतम॥ १०७८॥

मेरे ही द्वारा मिला इसे बल है, कहते ये हैं, प्रियतम!
फिर मुझे भले भ्रम हो, पर हैं ये-ही-ये दीख रहे, प्रियतम!
कह देनेपर तो, रोक मुझे लेंगे अवश्य ही ये, प्रियतम!
चुपचाप अचानक जा समीप, देखूँ क्या है कैसा, प्रियतम॥ १०७९॥

अन्तर था सात हाथका ही, क्षणभर नीरज मुखको, प्रियतम!
मैं देख, वेग चपलाका ले उछली उसके आगे, प्रियतम!
बोली एवं—'कर ले तू जो चाहे, सम्मुख मैं हूँ, प्रियतम!
है सर्प सही तो काट मुझे, भ्रमजाल नहीं तो है' प्रियतम॥ १०८०॥

क्षण एक मुँदी आँखें मेरी, तुम तो पीछे थे ही, प्रियतम!
भर लिया भुजाओंमें मुझको, अनुभूति हुई ऐसी, प्रियतम!
दृग खोल तुरन्त चकित होकर बोली-'वह कहाँ गया?' प्रियतम!
बैठे मेरे कच सींच रहे, तुम थे लोचन जलसे, प्रियतम॥ १०८१॥

उस समय अहो! हम दोनोंका कैसा था हाल हुआ, प्रियतम!
तुम याद उसे कर लेना, मैं रख लेती हूँ मनमें, प्रियतम!
क्या कहना है किससे, भौंरा समझेगा क्या इसको, प्रियतम!
दे प्राण मिला तुममें, मुझमें, तो जान भले ही ले, प्रियतम॥ १०८२॥

रोता है पर यह इसीलिये, कुछ तो कहना ही है, प्रियतम!
लज्जित हूँ बहुत अधिक यद्यपि उतना भी कहनेमें, प्रियतम!
जो काल परे कलनासे है, कितना था बीत चुका, प्रियतम!
तुम ही जानो समाधि जब थी टूटी, तुम यों बोले, प्रियतम॥ १०८३॥

'जिन महाभावमय नयनोंमें हूँ बसा सदा ही मैं, प्रियतम!
जाता है उपल पिघल जिनसे, पावक होता हिम है, प्रियतम!
जो हैं अतीत फिर वर्तमान, भावीके दृश्योंमें, प्रियतम!
सागर रसमय उच्छलित, नित्य भरती स्वभावसे ही, प्रियतम॥ १०८४॥

उन आँखोंमें ही सना हुआ, उनसे ही प्रेषित मैं, प्रियतम!
था हुआ, अतः गल गया उरग, अचरज इसमें क्या है, प्रियतम!
बच रहा रंग काला उरमें भरनेके लिये वहाँ, प्रियतम!
प्रियतमे! कहूँ क्या, मेरी है हो रही रुद्ध वाणी' प्रियतम॥ १०८५॥

प्रक्षालित किये तरंगोंने फिर पद हम दोनोंके, प्रियतम!
व्याकुल होकर आ चिपट गयी रेणुका किंतु अमला, प्रियतम!
'क्यों छोड़ चले तुम मुझे यहीं, दम्पति हे!' थी कहती, प्रियतम!
उज्ज्वल वितान था तान रहा ऊपर हिमकर, करसे, प्रियतम॥ १०८६॥

मनमें मैं व्यथित हुई-सी थी कह गयी—'न छोड़ूँगी, प्रियतम!
कोई भी हो, कैसी भी हो, जो जुड़ी तनिक-सी है, प्रियतम!
आशा उसकी मैं क्यों तोड़ूँ, साँवर तो हैं मेरे, प्रियतम!
दूँगी, कह जो कर लेंगे, फिर यह तो है पद थामे, प्रियतम॥ १०८७॥

कितनी मृदुला, कितनी हलकी, कितनी उजली यह है, प्रियतम!
जड़ बनी अपनपौ खोकर, है मेरे ही लिये पड़ी, प्रियतम!
साँवरकी यह दासी, इसकी निष्ठा कैसे भूले, प्रियतम!
हे धूलि! परम मंगल हो, ये स्वीकार करें तुमको, प्रियतम॥ १०८८॥

हे प्राणनाथ! हो गयी देर अब चलो कुञ्जमें हे, प्रियतम!
हे श्यामचन्द्र! किरणोंका हूँ स्वागत करती कहती, प्रियतम!
देते रहना शीतलता ही अविराम यहाँ सबको, प्रियतम!
फिर रास दिखाऊँगी तुमको, कह चली, चले तुम भी, प्रियतम॥ १०८९॥

कुछ बात बताकर तुम हँसते, बन जाती 'फूल' हँसी, प्रियतम!
मेरे आगे बन जाता था सुन्दर पथ सुमनोंका, प्रियतम!
रखते पर पद तुम रजमें थे, कुसुमोंको बचा-बचा, प्रियतम!
था हेतु बताया—'प्यारी! हैं प्राणोपम रजकणिका, प्रियतम॥ १०९०॥

जब दयामयी तुमने इच्छा कर ली, ये साथ चलें, प्रियतम!
त्यागूँ कैसे फिर मैं इनको, हूँ जहाँ, रहेंगी ये, प्रियतम!
मेरे प्राणोंकी रानीके पदमें जो चिपक गयीं, प्रियतम!
उनको क्या दे सकता हूँ मैं, ऋणिया हूँ नित्य बना' प्रियतम॥ १०९१॥

रो उठी बात सुनकर मैं थी, जैसे-तैसे पहुँची, प्रियतम!
तटिनी निकुञ्जमें शय्या थी पद्मोंकी बिछी हुई, प्रियतम!
मैं लेट गयी, तुम जा बैठे मेरे ही पदतलमें, प्रियतम!
हो गद्गद बोले—'दान महा प्रियतमे! मुझे यह दो, प्रियतम॥ १०९२॥

हूँ लिये लालसा मैं भी यह, अपने केशोंसे ही, प्रियतम!
ये पोंछ चरण, असमोर्ध्व रहूँ बड़भागी, सुखी सदा, प्रियतम!
मेरा ही स्वत्व रहे, इनपर, केवल छूएँ वे ही, प्रियतम!
जिनका मन-बुद्धि-अहं काला जलदाभ बने मुझ-सा' प्रियतम॥ १०९३॥

जैसे सुख हो तुमको, कर लो, उसमें ही हूँ सुखिनी, प्रियतम!
जीवनधन! अहो! कभी तुमको मैं म्लान नहीं देखूँ, प्रियतम!
अस्तित्व रहे बस कण-कणका, मेरे मनके-तनके, प्रियतम!
देनेके लिये नित्य तुमको, प्रतिपल नवीन सुख ही, प्रियतम॥ १०९४॥

भावित इस भाँति हुई मेरी पलकोंसे अनुमति ले, प्रियतम!
लालित सुरभित कुन्तलसे तुम कर रहे चरण ये थे, प्रियतम!
था भान न हुआ हमें यह भी, कब बीत गयी रजनी, प्रियतम!
हे मधुप! अतः छूना मत तुम मेरा पद, है विनती' प्रियतम॥ १०९५॥

हो गयी निमीलित बालाकी उत्पल-दल-सी आँखें, प्रियतम!
कहती जाती यद्यपि अब भी वह बात रसीली थी, प्रियतम!
सुन सकीं उसे पर वे जो थीं स्वाहा सर्वस्व किये, प्रियतम!
मोहित जो था जल-बुद्‌बुद्‌से या है, सुन लें कैसे, प्रियतम॥ १०९६॥

पाटल-से होठोंका हिलना देखा दिनकरने है, प्रियतम!
निर्लिप्त, किंतु फिर भी विमुग्ध आकाश लिये ध्वनि है, प्रियतम!
छूकर है उसे अनिल चञ्चल, है नीर सरस उससे, प्रियतम!
उसकी सहिष्णुताकी सुगन्ध, ली छिपा मेदिनीने, प्रियतम॥ १०९७॥

दो दण्ड वहाँ सब ओर रही छायी नीरवता-सी, प्रियतम!
केवल थी स्वगत बात करती, वह भावमयी पुतली, प्रियतम!
मानो फिर लहर लगी उठने, उसमें नवीन सहसा, प्रियतम!
बोली खिन्ना-सी, किंतु मधुर तारों-से भी स्वरमें, प्रियतम॥ १०९८॥

"बक गयी अनर्गल मैं क्या-क्या, विक्षिप्त हुई मति है, प्रियतम!
रोता है दीन हुआ षट्पद, मैं कथा लगी कहने, प्रियतम!
बतला दो, बतला दो अलि हे! हर लूँगी सभी व्यथा" प्रियतम!
कहती ध्यानस्थ हुई क्षण कुछ, कह उठी पुनः पगली, प्रियतम॥ १०९९॥

‘हे भृङ्ग! न जब तुम कहते हो, हूँ पूछ रही उनसे, प्रियतम!
देंगे कह वे’, पल भर रुककर, रच दी रसकी सरिता, प्रियतम!
‘मैं गुप्त मनोरथ जान गयी, जो लिये हुए तुम हो, प्रियतम!
वह तो दे ही देती हूँ, फिर किञ्चित् अपनी रुचिसे’ प्रियतम॥ ११००॥

द्रुम-लता तथा भुजलता बनो, उनकी इस दासीकी, प्रियतम!
सुख-संग मिले उनका तुमको, खण्डित न कालसे हो, प्रियतम!
मेरी इस अरुण कञ्चुकीके बन्दोंमें बँधी हुई, प्रियतम!
अनुरक्ति, नित्य सहचरी रहे सौरभ देती तुमको’ प्रियतम॥ ११०१॥

गिर गयी धरापर कहकर यह, तन-सुधि खोकर बाला, प्रियतम!
सहचरी बड़ी जो उससे थी, दुखिया उसके दुखसे, प्रियतम!
उसका सिर गोदीमें अपनी लेकर बोली रोती, प्रियतम!
‘हे दूत! विरहमें उनके है, क्या दशा हुई इसकी, प्रियतम॥ ११०२॥

दीखे क्षणभर तुम थे इसको, बोली कुछ फिर भूली, प्रियतम!
अनुभव तमालको कर साँवर, कर गयी बात उससे, प्रियतम!
आँखें जब पुनः पड़ीं तुमपर, थी भ्रमित हुई तुमसे, प्रियतम!
हैं वे, है मोर, नहीं, भौंरा, उर खोल गयी अलिसे, प्रियतम॥ ११०३॥

वरदान दिया है मधुकरको इसने, तथापि मानो, प्रियतम!
अपने ही लिये इसे तुम, हे! साँवरके दूत सखा, प्रियतम!
अक्षरशः होगा सत्य सदा, कहती मैं हूँ ललिता, प्रियतम!
उनसे कहना, जो है देखा या सुना यहाँ तुमने’ प्रियतम॥ ११०४॥

कहकर मुरछित हो गयी सखी, वह भी वैसी दीना, प्रियतम!
वह दूत बहाता जल दृगसे, दोनोंकी पदरजमें, प्रियतम!
दो दण्ड लोटकर चला गया उन्मत्त हुआ वनसे, प्रियतम!
हैं ज्ञात सभी बातें तुमको, कह गयी तनिक फिर भी, प्रियतम॥ ११०५॥

जब जगी स्वप्नसे थी बाला, उस पादपके नीचे, प्रियतम!
पीये मद-सी उठ पड़ी, चली, पग थे डगमग उसके, प्रियतम!
फिर भान हुआ साँवर आये, दे गलबाँही बोले,प्रियतम!
'प्रियतमे! चलो लीला देखें धारामय उस सरकी' प्रियतम॥ ११०६॥

अब पुनः वही बाला बैठी ललिता निकुञ्जमें है, प्रियतम!
तुम भी हो साथ, किंतु मानो, है देख रही सपना, प्रियतम!
पीपर है, ऊपर है जिसकी जड़, है शाखा नीचे, प्रियतम!
उसके नीचे अर्चन कर है, संथा देती तरुको, प्रियतम॥ ११०७॥

है तत्त्व बताया तुमने ही, तुम-ही-तुम हो मेरे, प्रियतम!
है या केवल राधा-राधा, फिर नित्य युगल भी हो, प्रियतम!
यह मैं प्रतिबिम्बित है प्रतिमा राधाकी मायामें, प्रियतम!
है किंतु बिम्बसे भिन्न कहाँ सत्ता छायाकी, हे प्रियतम॥ ११०८॥

राधिकारमण निरवधि जय जय, जय अम्बुजनयन सदा, प्रियतम!
जय सतत नन्दनन्दन जय जय, जय नाथ निरन्तर, हे प्रियतम!
गोपिका-प्राण सर्वदा तथा जय मन्मथमथन अहो, प्रियतम!
चिरकाल विश्वरञ्जन जय जय, जय कृष्ण अहर्निश, हे प्रियतम!
जय राधावनकुञ्जविहारिन्, कुञ्चितकुन्तल-मुरलीधारिन्!
प्राणेश्वरीनयनसृतिकारिन् जय विहारिणीभावविनोदिन्॥ ११०९॥

नाची रसना, रसराज इसे जैसे जब नचा गये, प्रियतम!
गँठजोड़ अनन्त कालतक यह, इसका उनसे ही है, प्रियतम!
वे चाहेंगे, वैसी होगी यह महाभावलीला, प्रियतम!
जय अहो यशोदानन्दन जय मोहन जय वनमाली, प्रियतम॥ १११०॥

प्राणाधिक जय कृष्ण, जय कुञ्जजनेश्वर!
कुञ्जेश्वरि राधे जय प्राणेश्वरि हि राधिके॥ ११११-क॥

दूसरा पाठ—

हे प्राणाधिक श्रीकृष्ण, जय कुञ्जजनेश्वर!
हे प्राणाधिक मत्कृष्ण, जयकुञ्जजनेश्वर॥ ११११-ख॥

एकादश शतक समाप्त

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

गोरखपुर :

१. हरिकृष्ण दुजारी, पो. गीतावाटिका, गोरखपुर, फोनः ०५५१-२२८४७४२.

२. साहित्य मंदिर, हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति, पो०-गीतावाटिका, गोरखपुर-२७३००६. फोनः ०५५१-२२८३४६०.

३. योगेन्द्रनाथ बंका, गोरखपुर मशीनरी स्टोर, गोलघर, गोरखपुर-२७३००१. मो. ०९४१५८२३९५१.

कोलकाताः

१. कमलकुमार अग्रवाल, ४२, विवेकानन्द रोड, कोलकाता-७००००७. फोनः (०३३) २२७२८२०७.

वृन्दावनः

१. खण्डेलवाल एण्ड संस, अठखम्भा बाजार, वृन्दावन-२८११२१. फोनः (०५६५) २४४२१००/२४४३१०१.

जयपुर :

१. धार्मिक साहित्य सदन, बुलियन बिल्डिंगके अंदर, हल्दियोंका रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर (राजस्थान) ३०२००३. फोनः ०१४१-२५७०६०२.

स्वर्गआश्रम :

१. विष्णु पुस्तक भण्डार, पो. स्वर्गआश्रम, ऋषिकेश - २४९३०४



मेरे प्राणोंकी रानीके पदमें जो चिपक गयीं, प्रियतम!
उनको क्या दे सकता हूँ मैं, ऋणिया हूँ नित्य बना प्रियतम॥ १०९१॥

साँवर-साँवर ही आगे हैं, साँवर ही पीछे हैं, प्रियतम !
साँवर-साँवर ही दहिने हैं, साँवर ही बायें हैं, प्रियतम !
साँवर-साँवर ही नीचे हैं, साँवर ही ऊपर हैं, प्रियतम !
साँवर-साँवर ही अब केवल सर्वत्र अवस्थित हैं, प्रियतम !

है तत्त्व बताया तुमने ही, तुम-ही-तुम हो मेरे, प्रियतम !
है या केवल राधा-राधा, फिर नित्य युगल भी हो, प्रियतम !
यह मैं प्रतिबिम्बित है प्रतिमा राधाकी मायामें, प्रियतम !
है किंतु बिम्बसे भिन्न कहाँ सत्ता छायाकी, हे प्रियतम !

राधिकारमण निरवधि जय जय, जय अम्बुजनयन सदा, प्रियतम !
जय सतत नन्दनन्दन जय जय, जय नाथ निरन्तर, हे प्रियतम !
गोपिका-प्राण सर्वदा तथा, जय मन्मथमथन अहो, प्रियतम !
चिरकाल विश्वरञ्जन जय जय, जय कृष्ण अहर्निश, हे प्रियतम !

—इसी काव्य से

(कवरके मुख्य पृष्ठपर भगवान श्रीराधा-कृष्णकी झाँकी
छन्द १०८६ से १०८८ में वर्णित है।)